मेरे दो शब्द

यह ग्रन्थ श्री सोमकीर्ति भट्टारकके संस्कृत ग्रन्थका भावानुवाद है, मैंने अपनी शक्ति अनुसार उसे हिन्दीमें सरल बनानेकी चेष्टा जरूर की है। आशा है पाठकोंको यह अवश्य ही पसन्द आवेगा। करीब २५ वर्ष पहिले इसकी हिन्दी आवृत्ति छपी थी, परन्तु अब बहुत दिनोंसे नहीं मिल रही है अतएव इसको इसीलिये आज कलकी भाषामें स्वतंत्र रूपसे लिखकर तैयार किया है। इसके सम्पादनमें हमारे मित्र पण्डित श्रीकृष्णशुक्लजी व्या० तीर्थ 'विशारद' ने बहुत कुछ मदद दी है, इसके लिये मैं उन्हें कोटिः धन्यवाद देता हूं।

गत एडीशनकी अपेक्षा इस आवृत्तिमें काफी परिवर्तन कर दिया है, अर्थात साइज दूनी कर दी है, टाइप बड़े कर दिये हैं। पुष्ट, कागज और दर्जनों चित्रोंकी भरमारसे पुस्तककी सुन्दरता बहुत कुछ बढ़ गई है टाइपकी गलतीसे पुस्तककी अशुद्धियोंको सुधारके लिए शुद्धि-पत्र भी दिया गया है। आशा है धार्मिक समाज इसे अपनाकर मेरे उत्साहको बढ़ावेगी।

—परमानन्द

सम्पादक "दूध-बताशा"

कथा-सूची

नोट—कमरपर तीनरङ्गा चित्र दिया हुआ है उसमें प्रत्येक कथाका नम्बर तथा उसके नीचे उसीका फल दिखाया गया है॥

शुद्धि-पत्र

पृष्ट	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
१	७	अपनी	अपने
१	१४	में	से
२	१६	करने वाला	वाला
६	७	भुलाई	भुलाई गई
८	६	पर	पै
९	२४	भी	ही
९	१	हो	हो
९	४	स्वगया	स्वगदया
९	१६	मुकुट	मुकुर
९	२२	हो	ही
१०	१४	स्थलपर	स्थलपद्म
१०	१८	है	हो

पृष्ट	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
१२	६	परिवतित	परिवर्तित
१४	१	इसके	इस
१५	३	उसी	इसी
१५	१२	शोपित होता	शोभित होती
१५	१७	दान	खान
१६	१०	लोलुपी	लोलुप
१६	२५	स्वादिष्ट	स्वाद
१७	६	अनीत	अनीति
१८	१७	व्यवहार	त्याग
१९	२	तरण तारणी	तरुण तरणी
२०	१५	परिपयुत	परिप्लुत
२१	२	कणकी	कण
२४	८	तटपती	तटवर्ती
२४	१२	प्रेमोद्गार	प्रेमोद्गार
२४	२७	लगा	लगा कलेजा
२५	७	परिपूर्ण	परिपूर्ण कलश; कहीं
२५	७	हुए	हुए पहलवानों
२५	१७	शुभादर्शन	शुभ दर्शन
२५	१७	प्रान्त	आज
२६	१३	पीठ	पीछे
२६	१२	प्रसाद	प्रासाद
२९	२३	कोर	और
३०	१३	आपका	आप
३०	२५	सुनकर	सुनाकर
३०	२६	करा	कर
३०	२७	गणाधर	गणधर
३१	११	अश्व	अस्त्र
३१	१२	चिता	चितायें
३१	२५	कि	कि मानों
३५	२६	स्तुयादि	स्तुपादि
३६	२०	मिलता	मिलती
४०	६	यह आखों	आंखें
४१	१५	या	था
४१	१६	वह देवाराधन	देवाराधन

पृष्ट	लाइन	अशुद्ध	शुद्ध
४१	२५	प्रयेदिरे प्राकृत	प्रपेदिरे प्राक्तन्
४१	२६	विद्याभ्यन	विद्याभ्ययन
४२	१२-१३	डाल	ढाल
४३	२१	अंगराज	अंगराग
४५	२०	मत्र	कत्र
४६	२०	देखो चारुदत्त	चारुदत्त
५१	३	मैंमैं	में में
५१	८	मिमयाना	मिमियाना
५२	२६	दुरगम	दुगम
५३	६	उस	उन
५३	१३	पर	परकि
५३	१९	कोई	कोउ आज भिखारिन
५४	१६	की	के
५४	२४	पूछा अपने	पूछो अपने
५५	८-२०	यज्ञ वाल्क्य	याज्ञवल्क्य
५५	२६	असीक	असंख्य
५६	२४	था	था, कि
५६	२५	गये होंगे	गये
५६	२७	नामक	नामक राजाके राज्यमें किसी
५८	६	लवंलता	लवंगलता
६२	१	अपनी	अपने
६२	२५	जिससे	जिससे यह
७३	२	है ताकि	होता कि
७३	२	कर लो	कर लेती
७३	७	शूपनखा	शूर्पणखा
७३	२०	वैठाया	वैठाया और
७३	२५	किया	की
७४	५	ही न	नहीं
७८	५	करना	करनी
७९	५	दिया	दिया और कहा कि
८२	३	भाई	रामने पूछा किभाई
८३	११	पुरुषों	पुरुष

श्रीवीतरागाय नमः

सप्त व्यसन चरित्र।

जुवा खेलना, मास, मद, वेश्या व्यसन शिकार।
चोरी पर रमणी रमण सातों व्यसन निवार॥

ग्रन्थकी निर्विघ्न समाप्तिके हेतु आन्तरिक और बाह्य परिग्रह रहित सांसारिक मनोभिलाषाओंको पूर्ण करने वाले श्री पंच परमेष्ठी एवं जिनेश्वरके मुखकमलोद्भव कल्याणप्रदायिनी श्री शारदा देवी एवं गुरुजनोंके चरण कमलको सादर भक्ति पूर्वक प्रणाम कर प्राणियोंके कल्याणके लिये अपनी बुद्ध्यानुसार 'सप्त व्यसन चरित्र' नामक ग्रन्थको लिखनेका प्रारम्भ करता हूँ।

उपलिखित सप्त व्यसन ये हैं:—(१) जुवा खेलना (२) मांसाहार (३) मदिरा सेवन (४) वेश्यागमन (५) आखेट (६) आस्तेय (चोरी करना) तथा (७) परस्त्री गमन।

इन सप्त व्यसनोंके सेवनसे जिनको जिनको अनेकानेक दारुण दुःख भोगने पड़े हैं उनका विशेष चरित्र नीचे दिया जाता है।

(१) जुआके व्यसनमें धर्म-प्राण युधिष्ठिर महाराजको केवल अपना राज्यही नहीं खोना पड़ा बल्कि नरकका दर्शन भी करना पड़ा। (२) मांस भक्षण से राजकुमार बकको (३) मदिरा पानसे वीर यादवोंको (४) वेश्यागमनसे वणिक श्रेष्ठ चारुदत्तको (५) आखेटसे ब्रह्मदत्त चक्रवर्तीको (६) चोरी करनेसे शिवभूति ब्राह्मणको तथा (७) परस्त्री गमन तो दूर रहा, केवल हरणमात्रसे ही प्रतापी रावणादिको जो जो दुःख भोगने पड़े हैं उसके साक्षी हमारे पूर्व पुरुष विरचित अनेकों ग्रन्थ हैं। इन ग्रन्थोंको उठाइये, दिलकी आंख खोलकर पढ़ लीजिये, कान खोल कर सुन लीजिये, फिर तो आपको इन व्यसनोंसे स्वयं घृणा हो जायगी।

जम्बूद्वीपके अन्तर्गत इस भरतक्षेत्रमें मगध देश है। उस मगधदेशमें एक सुन्दर समृद्धिशाली राजगृह नगरी है। यही नगरी महाराजा 'श्रेणिक' की राजधानी थी। उनकी स्त्रीका नाम था 'चेलनी'। महाराज अपनी प्रजाको पुत्रवत् प्यार करते थे इसलिए प्रजा आपके राज्यमें अत्यन्त सुखी थी। उनके राज्य कालमें ही एक बार श्री वीर भगवान विपुलाचलके उपवनमें पधारे। तदन्तर अनेकों प्रकारके फल पुष्पादि उपहारोंसे सुसज्जित हो बनपालने राजाके सम्मुख जाकर भगवानके शुभागमनका समाचार सुनाया और कहा—"महाराज! मेरे हृदयसे यह पवित्र उद्गार उठ रहा है कि भगवानके शुभागमन जनित पुण्यसे आप बहुत कालतक राजलक्ष्मीसे अलंकृत होकर सांसारिक सुखोंका उपभोग करेंगे।" श्रीवीर भगवानके आगमन समाचारसे राजा फूले न समाये तथा इस सुसम्वाद दाता बनपालको अनेकों वस्त्र भूषणोंसे सुसज्जित कर विदा किया। फिर तो इस संवादकी घोषणा नगरके कोने २ में हो गई। राजा भी बहुतसे भव्य लोगोंको साथ लेकर भगवानकी पूजाके लिये उपवनकी ओर चले। वहां पहुंचकर उन्होंने भगवानकी तीन प्रदक्षिणा करके अष्टद्रव्यसे उनकी पूजा की और एकत्रित मानव सभामें बैठ गये। वहां उन्होंने जीवोंका कल्याण देने करनेवाला सदुपदेश श्रद्धाभक्ति पूर्वक श्रवण किया।

उसके बाद सुअवसर देख राजाने भगवानसे निवेदन किया:—

भगवन्! इस संसार समुद्रमें किस कर्मके द्वारा जीवको निरन्तर दुख भोगना पड़ता है, तथा उससे छुटकारा पानेका सुलभ मार्ग क्या है?

महाराज श्रेणिककी बात सुनकर भक्त-वत्सल भगवान बोले "राजन्! तुम्हारा यह प्रश्न बहुत ही सुन्दर है। इन प्रश्नोंका उत्तर तो मैं आगे चलकर पूर्ण रूपसे कहूँगा पर संक्षेपतः यही याद रखो कि 'सप्त व्यसनोंके सेवनसे ही यह आत्मा इस गहन संसारमें क्लेश एवं दुःखोंका शिकार बनती है। अतः इन्हीं सप्त व्यसनोंके दारुण दुःखद प्रभावको मैं अलग २ वर्णन करता हूं; उन्हें ध्यान देकर सुनो। यह सुनकर श्रेणिक बोले—नाथ! इसे सुननेके लिए मेरी भी अत्यन्त उत्कंठा है अतः कृपया मुझे सुनाकर कृतार्थ करें।

अब सप्त व्यसनोंके दारुण दुष्प्रभावको जिस प्रकार श्री वीर भगवानने

महाराज श्रेणिकसे वर्णन किया था उसीको पाठकोंके कल्याणार्थ इस ग्रंथमें क्रमशः वर्णन किया जायेगा। इसमें सर्व प्रथम द्यूत व्यसनमें फँसकर अनेकों दुःख भोगने वाले महाराज युद्धिष्ठिरका ही उपाख्यान वर्णन किया जायेगा। आशा है, ये उपाख्यान पाठक एवं श्रोतागणोंके सुपथ प्रदर्शक होंगे।

प्रथम द्यूत व्यसन कथा।

भारतवषमें कुरू देशान्तर्गत हस्तनागपुर नामक एक सुन्दर नगर था। यह नगर कुरू वंशोत्पन्न नीतिज्ञ एवं बुद्धिमान राजा 'धृत, की राजधानी थी। धृतकी अम्बा, वालिका तथा अम्बिका नामक तीन धर्मपत्नियाँ थीं। तीनोंसे क्रमशः धृतराष्ट्र, पांडु तथा विदुर नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुये। इनमें धृत-राष्ट्रके एक स्त्री थी। जिसका नाम था गान्धारी। पांडुके दो स्त्रियां थीं। उन दोनोंका नाम था कुन्ती तथा माद्री। इनमें तो धृतराष्ट्रके दुर्योधनादि सौ पुत्र हुये और पांडुके कुन्ती नामक स्त्रीसे युधिष्ठिर, भीम, तथा अर्जुन और माद्रीसे सहदेव और नकुल नामक पांच पुत्र हुए। अविवाहितावस्थामें ही पांडु के साथ सम्बन्ध हो जानेसे कुन्तीके कर्ण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।

इस प्रकार पुत्र पौत्रादिके सहित महाराज धृतराष्ट्रने चिरकाल तक राज्यलक्ष्मीका उपभोग किया। एक दिन शरद ऋतुमें स्वच्छाकाशमें बादलोंकी शोभा देख धृतराष्ट्रकी इच्छा वैसे ही सुन्दर महल बनवानेकी हुई। फिर क्या था; उन्होंने तुरन्त चित्रकारोंको बुलाकर आज्ञा दी "तुम शीघ्र इन मनोहर बादलोंका चित्र खींचो। मेरी इच्छा इसी बादलके समान एक सुन्दर महल बनवानेकी है।" महाराजकी आज्ञाकी देरी थी। चित्रकारोंने अपनी २ सामग्री लेकर तुरन्त काम शुरू किया। पर 'संसार'का तो अर्थ ही है—जो एक स्थानपर नहीं टिके, एक जगहसे दूसरी जगह घसकता रहे। यहांपर किसीका अस्तित्व सर्वदाके लिये नहीं रहता। भले ही कोई धनमदान्ध एवं बलमदान्ध होकर अपनेको अजर अमर समझता हो पर एक न एक दिन उसको भी कराल कालके मुखमें जाना पड़ेगा। अब ज़रा बादलकी हालत देखिए! वायुका झकोरा दक्षिण दिशासे उठता है और टुकड़े २ कर गगन मण्डलमें तितर बितर कर देता है। जब यह खबर राजाको मिली तब तो उनके दुःखका अन्त नहीं

रहा। उन्हें संसारसे वैराग्य उत्पन्न हो गया और सोचने लगे:—'जिस प्रकार ये बादल आँखोंके देखते २ ही नष्ट हो गए इसी प्रकार सांसारिक मोह जालोंमें फंसाने वाले स्त्री, पुत्र, धन यौवनादि भी नष्ट हो जायेंगे। इस क्षणभंगुर संसारमें जीवको माया, मोहादि जालोंमें फंसकर अनेकों दुःख यातना भोगना पड़ता है। अतः जिन्होंने इस जालको काटकर दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण की है उन्हींका जन्म संसारमें सार्थक है, वे ही सुखी हैं, उन्हींकी आत्मा पवित्र है तथा वे ही संसारसमुद्र पार कर अखंड अविनाशी शिवपुरीके सुखका भाजन हैं। अतः मेरे लिए भी अब यही उचित है कि सांसारिक बन्धनोंको काट, धन ऐश्वर्यको ठुकरा, अविनाशी मोक्ष रूपी महल प्रदान करने वाली जैन-दीक्षा, ग्रहण करूं। ऐसा दृढ़ निश्चय कर धृतराष्ट्रको राज्य भार सौंपकर और पांडुको युवराज बनाकर आपने मोक्ष लक्ष्मी प्राप्तिके लिये जिन दीक्षा ग्रहण की। इस प्रकार चिरकाल तक तपश्चरण कर अपने घातिया कर्मको नाशकर धृतराष्ट्रने केवलज्ञान प्राप्त किया और इसके फल स्वरूप उन्हें मोक्ष पद मिला और मुनिराज विदुर पृथ्वीपर विहार करने लगे।

एक दिन दोनों भाइयोंने कमल पुष्पके भीतर एक मृतक भौंरेको देखा। भ्रमरको देखना ही था कि हृदयमें वैराग्यने घर कर लिया। फलतः उन लोगोंने राज्यको दो बराबर बराबर हिस्सोंमें बिभाजित कर अपने अपने पुत्रोंमें बांट दिया और स्वयं जिन दीक्षा लेली। इधर कौरव पाण्डवोंमें भी पारस्परिक मनोमालिन्य पराकाष्ठा तक पहुंच ही चुका था। उत्थानके बाद पतन और पतनके बाद उत्थान होना अनिवार्य है। इस लिए विधाताने इसे नष्ट करनेका भार कौरवोंके मामा शकुनीके हाथमें दिया। शकुनी तो 'शकुनी' (कौवा) ही था। नामका भी तो कुछ प्रभाव होना चाहिए। चूंकि राज्य कौरव पाण्डवोंमें बराबर २ बिभाजित था अतः जितना सुख-साधन पाण्डवोंको था उतना कौरवोंको नहीं इस बातने शकुनीके हृदयमें कुटिल रूप धारण किया। फिर क्या था उसको न तो रातको नींद थी न दिनमें सुख। उसने बहुत सोचा, विचारा और नाश करनेका एक मार्ग ढूंढ़ ही तो निकाला। वह मार्ग यह था कि उनके आपसके प्रेम मार्गमें वैमनस्यका रोड़ा अटकाना। उसने कौरवोंका कान भरना

शुरू किया, और कौरवोंसे जाकर कहा—"देखो! कितना अन्याय है कि कहां पांच आदमियोंका हिस्सा उतना ही, जितना सौ आदमियोंका? तुम लोग तो निरे बालकके समान हो! क्या तुम्हें मालूम नहीं कि संसारमें सब जगह उसीका आदर होता है जिसके पास लक्ष्मी है? पाण्डवोंके सामने तुम लोग उसी प्रकार जीर्णकान्ति मालूम पड़ते हो जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंके सम्मुख चिराग। फिर क्या था, जिस प्रकार घरकी कुटिल स्त्रियां झूठी २ बातोंसे नित्य प्रति पुरुषका कान भरते २ भाई भाईसे, पिता पुत्रसे अलग करा देती हैं—अलग ही नहीं वरन् एक दूसरेके खूनका प्यासा बना देती हैं उसी प्रकार शकुनीके कान भरनेसे कौरवोंकी भी हालत हो गयी।

अतः कौरवोंने पाण्डवोंके नाशकी युक्ति सोच एक सुन्दर लाखका महल बनवाया। गृहोत्सवके दिन युधिष्ठिर भी अपनी माता कुन्ती एवं भाइयोंके साथ निमन्त्रित हो पधारे। मकानके अन्दर रात्रिमें शयन करनेका भी प्रबन्ध किया गया था। धीरे २ सूर्यकी गिरती हुई किरणोंने प्रतीचिका मुख लाल किया, संध्या हुई, रात्रिका समावेश हुआ और इस प्रकार संसारके सुखियों तथा दुःखियोंको अपनी गोदमें विश्राम देनेवाली निद्रा देवीका भी शुभागमन हुआ। अभी पाण्डव अपने अपने बिस्तरेपर झपकी ही ले रहे थे कि लाख पिघल २ कर गिरने लगा। घरसे बाहर निकलनेका मार्ग किसीको मालूम ही नहीं! अब किया ही क्या जाय! सहदेव थे बड़े प्रकाण्ड ज्योतिषी। उन्होंने अपने ज्योतिष शास्त्रके प्रभावसे बताया कि अमुक स्थानपर बाहर निकलनेका एक सुराख है। सुराखके ऊपर एक विशाल शिलाका टुकड़ा पड़ा हुआ था। भीमने अपने बाहु-बलसे शिलाको हटाया और सुरंगका मार्ग निष्कंटक कर दिया। उसी मार्गसे पांचो भाई अपनी माता कुन्तीके साथ बाहर निकल गये।

पाण्डव फंसे तो थे बड़ी भारी विपत्तिमें पर बच गये। वहाँसे निकलकर पाण्डव लोग अपनी इच्छानुकूल पृथ्वीकी प्राकृतिक शोभाओं तथा तप भूमियों का निरीक्षण करते हुए हस्तनागपुरमें पहुंचे। उधर पाण्डवोंके मारनेके लोकाप-वादसे कौरवोंका जीवन कालिमासे कलंकित हो चला। ठीकही है, बुरे कार्य्यकी प्रवृत्तिसे जब चन्द्रमामें भी कलंक लग गया तो देहधारी मनुष्यों की गिनती

क्या ? इस प्रकार बशुन्धरा की शोभाका निरीक्षण करते करते वे लोग कवि-कोविद्-वर्णित स्वर्गीय सुसुमाशाली राजाद्रुपद्की राजधानी माकंदीमें पधारे।

द्रुपद् राजाकी धर्मप्रिया, महाराणी जायावतीके गर्भको पवित्र करने-वाली शारदीय चन्द्रवत् सुदर्शनी या रूप लावण्या पूर्ण वयस्का द्रौपदी नामक राजकुमारी थी। वैवाहिक काल आनेपर उसके पाणिग्रहण करानेकी चिन्ताने महाराजाके हृदयको चिन्तित किया। उत्तम पुरुषोंको पुत्री की वड़ी ही चिन्ता होती है। मन्त्रियों की सभा बुलाई और निश्चित हुआ कि प्रौढ़ा कन्याके लिये स्वयंम्बरका मार्ग ही उत्तम है। शुभ मुहूर्त तथा शुभ योग देख कर पुत्रीका स्वयंबर प्रारम्भ हुआ। धृष्टद्युम्न, विराट, सात्यकि एवं दुर्योधनादि वड़े बड़े राजा निमन्त्रणमें आये। उस समय यह निश्चित हुआ कि जो इस राधावेदको वेधेगा वही द्रौपदीके पाणीग्रहणका भागी होगा। दैवयोगसे पाण्डव भी वहां आ गये। कौरवोंसे अपनेको गुप्त रखनेके लिये उन लोगोंने अपना वेश बदल रखा था। उपस्थित राजाओंमेंसे बहुतोंने तो राधावेधको वेधनेमें अपनी शक्ति की भी अजमाइस की और बहुतोंने केवल मौन ही धारण कर अपनी प्रतिष्ठा रखी। सबके चेहरे फीके पड़ गये! द्रुपद्की भी चिन्ताका ठिकाना नहीं रहा! पर उदयको तो किसीकी प्रतिज्ञा पूरी ही करनी पड़ती है इतनेमें प्रच्छन्न वेशधारी पांचों भाइयोंके बीचसे अर्जुन उठ खड़े हुए और बोले—"क्या इस राधावेधको बेधनेवाले की जातिपातिके ऊपर भी कुछ प्रति-बन्धता है या नहीं? यदि नहीं, तो मैं भी अपने पुरुषार्थकी परीक्षा करूं"। उनकी बात सुन कर पहले तो सब राजा चकित रह गये पर पुनः हँस कर बोले—"क्या तुम अर्जुन हो कि इस प्रकार निर्भीक हो कर बोल रहे हो"? अर्जुनने उत्तर दिया "क्या इस पृथ्वीपर एक अर्जुन ही हैं"। इस पर राजाओंने कहा—हां केवल एक अर्जुन ही हैं। इस प्रकार पूर्ण रूपसे शंका समाधान कर अर्जुनने धनुष की प्रत्यञ्चापर बाण चढ़ाया। फिर क्या था देखते ही देखते उसने राधा-वेधको वेध दिया। "अर्जुनके बाणविद्याकी कुशलता देख सब राजा दंग रह गये; द्रुपदके हर्षका पारावार न रहा। तुरन्त आज्ञा हुई; द्रौपदीने सोनेकी झारी और पुष्पकी माला लेकर मण्डपमें प्रवेश किया। अर्जुनका कंठ पुष्पकी मालासे

सुशोभित हो गया। पर दुर्भाग्य अकेले नहीं आता। वायुका झकोरा भी चला अर्जुनके कंठसे माला भी उड़ी और टूट कर उसके पुष्प अन्य भाइयोंपर गिरे?

अर्जुनके द्वेषसे तो सब राजाओंके हृदयमें क्रोधाग्नि स्वयं धधक रही थी अब तो कण्ठच्युत मालाने अग्निमें घीका काम किया। मालाके उड़ते ही लोगों में हल्ला मच गया, वे कहने लगे—"द्रौपदी धर्मभ्रष्टा है, उसने उन पाँचोंको पति बनाया है।" राजा लोग बिगड़ खड़े हुए और कहने लगे हम लोगोंके रहते २ उसने एक भिखारीको अपना पति चुनकर हम लोगोंकी भारी अवहेलना की है। अन्तमें सब राजाओंमें युद्धकी तैयारी होने लगी। इतनेमें उनमेंसे एकने कहा—'भाई! पहले दूत भेजकर कन्या लौटानेका पूछ लो यदि नहीं दे तो युद्ध करना ठीक होगा। कारण कि काम ऐसा करना चाहिये कि "न साँप भी मरे और न लाठी भी टूटे" यह राय सबको जँच गई। अर्जुनके पास दूत भेजा गया पर अर्जुनने कहला भेजा कि इसका निपटारा केवल युद्ध ही द्वारा हो सकता है; इसके लिए अन्य उपाय नहीं। फिर क्या था युद्धका डंका बजा। रणदेवीका आह्वान हुआ तथा दोनों तरफके योद्धा रणप्राङ्गणमें आ धमके महाराज द्रुपदने भी अर्जुनका साथ दिया। साथ देना भी उपयुक्त ही था। बड़ोंका तो यह लक्षण ही है कि "प्राण जाहिं पर बचन न जाहीं।" दोनों ओरके योद्धाओंमें घमासान युद्ध शुरू हुआ, लोथपर लोथका ढेर लग गया, रुधिरकी नदियाँ बह चलीं। अर्जुनके वाण बौछारसे सब राजा व्याकुल हो उठे। सेनाओं के पाँव उखड़ गये, इस तरह सेनाका सर्वनाश देख दुर्योधन भी भीष्मके साथ रणभूमिमें आ उपस्थित हुआ। अर्जुनने भीष्मको देखकर विचार किया कि भाई, अब तो बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हुई। यदि अब यहां अपनेको गुप्त रखता हूँ तो भीष्मके वाणोंसे हमारी सेनाका सर्वनाश होता है और फलतः मुझे भी गुरूपर वाण प्रहार करना पड़ेगा फिर यदि अपनेको प्रत्यक्ष करता हूँ तो भी ठीक नहीं होता। बहुत सोच विचारकर उन्होंने एक वाणपर अपना नाम ग्राम लिखकर भीष्मपर फेंका। वाण जाकर भीष्मकी गोदमें गिरा। गिरते ही भीष्मकी नजर वाणपर अङ्कित अक्षरोंपर पड़ी। पढ़कर यह सूचना उन्होंने दुर्योधनको दी। अब तो दुर्योधनकी व्याकुलता और आश्चर्यका ठिकाना ही न

रहा। उसकी रही सही हिम्मत भी अब जाती रही जिस किसी तरह दुःखके साथ रथसे नीचे उतरा और मायासे आँखमें आंसू भरकर पाण्डवोंके पास जा कर रोने लगा तथा बारम्बार अपने कृत्य पापाचरणको छिपानेके लिये बहाना करने लगा। बातको जानते हुए भी पाण्डवोंने निष्कपट भावसे उसे गले लगाया। सज्जनोका स्वभाव भी स्वभावसे ही ऐसा होता है। देखिये, बड़े और छोटेमें कितना अन्तर होता है? कहा भी है कि "बड़े बड़ाईपर लहै लहै निचाई नीच, सुधा सराहिये अमृता गरल सराहिए मीच।" यह बात जब राजाओंने सुनी तब तो सबकी क्रोधाग्निपर पाले पड़ गये।

शुभ मुहुर्तमें द्रोपदीका पाणिग्रहण अर्जुनके साथ हुआ। सब राजा अपनी-अपनी राजधानीको पधारे, उसके बादसे कौरव और पाण्डव एक दूसरे-के प्रीति भाजन बन सुख पूर्वक रहने लगे।

उनकी बढ़ती हुई प्रीतिको देखकर पुनः शकुनीसे नहीं रहा गया। दुष्टोंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि—'देख न सकहिं पराइ विभूती।' उसने पुनः कौरवोंको उभाड़ना शुरु किया। फलतः कौरवोंके सात्विक भावपर भी धीरे धीरे रजोगुणका प्रभाव पड़ने लगा। वे अब पाण्डवोंके दोष निरीक्षणमें ही व्यस्त रहने लगे।

एक दिन युधिष्ठिरके चित्तमें जुआ खेलनेका शौक आया—शौक क्या, यदि यह कहा जाय कि अपनी दुर्भाग्यताको निमन्त्रित करनेकी लालसा हुई तो कुछ अत्युक्ति नहीं होगी।

यद्यपि 'कर्म प्रधान विश्व करि राखा।' प्रधान माना जाता है तौभी 'भाग्यः फलति सर्वत्र नच विद्यानच पौरुषं' की प्रधानता इससे भी बढ़ कर मानी जाती है। फिर तो बिना जुआ खेले युधिष्ठिरको क्षण भर भी किसी दिन चैन नहीं! कर्म जिसको बिगाड़ना चाहता है, सर्व प्रथम उसकी बुद्धिपर भी पर्दा डालता है। देखिये, कहां धर्मप्राण युधिष्ठिर और कहां उनका यह अधार्मिक भाव! यह तो दुर्भाग्यताके आगे आगे चलने वाली केवल दुर्बुद्धिका ही प्रभाव कहा जायेगा।

एक दिन कौरव पांडवोंका सम्मेलन हुआ। जुवा प्रारम्भ हुआ। दुर्यो-

धनका पाशा पड़ता ही था अत्युत्तम, पर भीमके हुंकारसे वह उल्टा हो जाता था। यह देख दुर्योधन भीमको वहांसे हटानेका उपाय सोचने लगा। और अन्तिममें एक उपाय निश्चित किया उसने कहा-भाई भीम ! मुझे प्यास लगी है। अतः तुम आजानु गंगाजलमें प्रवेश कर स्वगया ताड़ित जलकी उच्छरित बुन्दोंसे मेरी प्यास बुझाओ। भीमका हृदय शुद्ध गंगाजलके समान निर्मल था; उनके हृदय मुकुरमें छल कपटका नामो निशान नहीं था। फिर जब दुर्योधनने कहा कि भाई इस कार्यको सम्पादन करनेमें तुझे छोड़ मुझे यहां अन्य कोई नजर नहीं आता तब वे झट उठे और गंगाकी ओर लपके। उनका सभा मण्डपसे उठना ही था कि दुर्योधनका सितारा चमका और युधिष्ठिरकी भाग्य-लक्ष्मीने पलटा खाया। अब तो युधिष्ठिर हारते हारते अपने खजाने, धन, दौलत, हाथी घोड़े, महल कोठे अटारी यहां तक की सती द्रोपदीको भी हार गये।

इधर दुर्योधनके कपट सूर्यने धीरे धीरे ग्रीष्म कालीन मध्यान समयके प्रचण्ड मार्तण्डके समान भीषण रूप धारण किया। अधर्म मार्गपर पदार्पण करनेवाले युधिष्ठिरने श्रान्त पथिकके समान चारों ओर नज़र फैलाई पर वृक्षका कहीं भी नामो निशान नहीं; मृगतृष्ण रूपी जलका भी नाम नहीं। अब शान्ति मिले तो कहां ? मुखमण्डल ही हृदयका मुकुट है इसीपर मनुष्यके हृदयके दुःख सुख, हँसी खुशी बैर प्रीतिकी आभा प्रतिबिम्बित होने लगती है। अब हृदयकी वेदनासे युधिष्ठिरके मुख-कमल मुर्झा गये। अब भविष्य अन्धकार मय प्रतीत होने लगा। इतने ही में भीम जल लेकर लौट आये। भाइयोंके सुस्त चेहरे देख कर ही उनके होश पहले ही उड़ गये। उन्होंने दुर्योधनके सम्मुख जलका पात्र बढ़ाया। पर अब दुर्योधनको प्यास कहां ? उसकी प्यास तो कपट जलसे बुझ हो चुकी थी। अतः उसने कहा—"मुझे अब प्यास नहीं है।"

अब छली दुर्योधनने युधिष्ठिरसे कहा—"युधिष्ठिर गौरवान्वित एवं शूर-वीरोंके लिए परतन्त्र होकर रहना अच्छा नहीं। अब ये हाथी घोड़े, कोठे-महल सब मेरे हैं। अब तुम्हें दूसरेके घरमें रहना अच्छा नहीं। पर गृहवास सबसे बढ़कर निम्नताको लाने वाली है। इस प्रकार ताना मारनेपर युधिष्ठिर स्वयं वहांसे उठ खड़े हुए और महलसे निकलनेके लिए आगे पैर बढ़ाये। पांचों

भाइयोंके पीछे द्रौपदी भी चलनेको तैयार हुई पर दुष्ट दुर्योधन उसका वस्त्र पकड़कर खींचने लगा और बोला—"द्रौपदी क्या तुम्हें मालूम नहीं कि युधिष्ठिर तुम्हें जुएमें हार गये हैं ? अब तुम मेरी हो युधिष्ठिरकी नहीं।"

कई बार उसने लपक-लपक कर वस्त्र पकड़ा और चाहा कि द्रौपदीको नंगी कर दूं,पर कर्मकी लीला विचित्र है। वह जितनाही वस्त्र खींचता गया उतनाही वह बढ़ता गया। अन्तमें उसके पास वस्त्रका ढेर लग गया और द्रौपदी चुपचाप खड़ी रही सभासद् लोग यह देखकर चकित रह गये। किसीको पता नहीं चला कि "सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है कि सारिहिकी नारी है कि नारीहीकी सारी है।" अन्तमें सभासदोंसे यह अत्याचार नहीं देखा गया। उन लोगोंने दुर्योधनको बहुत फटकारा, तब कहीं उस दुष्टने द्रौपदीका पीछा छोड़ा। अब वह भयभीत चकित मृगीके सदृश स्वामीके पीछे पीछे राज महलसे निकल पड़ी। हा ! विधाता तुम्हारी गति बड़ी ही विचित्र है। वही द्रौपदी जो आजतक गगन-चुम्बित अट्टालिकाओंमें असूर्यम्पश्या थी आज उसे सूर्यकी किरणोंसे जलना पड़ा ? वही द्रौपदी जिसके पैर रखनेसे पृथ्वीमें स्थलपरके चिन्ह पस्फुटित हो जाते थे उसे आज कंकरीली जमीनपर चलना पड़ा।" भाइयो ! याद रखो, दुर्व्यसनमें पड़कर तुम स्वयं ही दुःख नहीं भोगोगे, साथ साथ तुम्हारे कुल-परिवारको भी भोगना पड़ेगा। इसलिये छोड़ दो ऐसे निंद्य कर्मको जिससे तुम्हारा भविष्य अंधकार मय दीखता है।

अटल नियमः—भाइयो कूपमें कूद कर नीचे न गिरना तो कदाचित हो भी सके, परन्तु जुएके दुर्व्यसनमें पड़कर क्लेशसे बच जाना कभी भी नहीं हो सकता। सूर्य उदय हो और प्रकाश न फैले यह तो कदाचित हो भी जाय परन्तु चित्तमें जुएके दुर्व्यसनका भाव मात्र होनेसे ही हमारी श्री, ही आदि मानो दूसरेकी पानी भरनेवाली दासी न हो जांय, ऐसा कभी नहीं हो सकता, देखो किस प्रकार आगे चलकर इनके हृदयमें लोभ और क्रोधकी जागृति होती है और भाई भाईको, पुत्र पिताको, पिता पुत्रको गुरु शिष्यको तथा शिष्य गुरुको वध करनेपर उतारू होते हैं। अस्तु, पाडव अनेकों वन उपवनों, नगर ग्रामों एवं पहाड़ियोंपर परिभ्रमण करते हुए विराट राजाकी राजधानी विराटपुरमें आये।

वहां वे लोग अपना अपना नाम और वेष बदलकर राजाके दरबारमें रहने लगे।

दैव ! तुम निश्चय ही बहुत निर्दयी हो। वही युधिष्ठिर जिनकी कीर्ति का गुणगान करनेके लिए देश देशान्तरसे बंदी और चारणगण आते थे आज वही तुम्हारी निर्दयतासे विराट राजाके यहां भाट बन कर आश्रय पाते हैं ?

इस प्रकार भीम रसोइयेके रूपमें, अर्जुन कंचुकीके रूपमें, सहदेव ज्योतिषी बनकर, नकुल सईस बनकर तथा द्रौपदी मालिन बनकर रहने लगी।

विराट राजाके एक साला था जिसका नाम था कीचक। वह एक दिन अपनी बहनसे मिलनेके लिये राजाके यहाँ आया। वह द्रौपदीकी सुन्दरता देखकर मोहित हो चला। उसने अपने काम वासनाकी तृप्तिका प्रस्ताव द्रौपदीके सामने रखा। लज्जाके वशीभूत दौपदीने तो पहले उसकी सुनी बातें अनसुनी कर दी। जब देखा कि इस दुष्टसे छुटकारा पाना तो बहुत कठिन है तो उसने भीमसेनसे सब बातें कह दी। भीमसेनने उससे कहा—"डरनेकी कोई बात नहीं। उसे आजही रातको नगरके बाहर शिव मन्दिरमें आनेका समय बता दो, मैं वहां तुम्हारे वेशमें जाकर उसका सब काम तमाम कर दूंगा।" फिर क्या था द्रौपदीका स्थान बताना ही था कि कीचककी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा। वह सूर्यकी मन्द गति पर क्रोध करने लगा। उसे तो होता था कि कब सूर्य्यास्त होगा। इधर सूर्य महाराज अस्ताचलको चले, उधर कीचक भी अपने वेष-भूषाको सजानेमें लीन हुआ।" "कामातुराणां न भयं न लज्जा कामीको भला भय और लज्जा कहाँ ? वह अकेले अंधेरी रातमें अपने काम वासनाकी पूर्ती करने अथवा यों कहिये कि परस्त्री गमनका दुःख भोगनेके लिये चल पड़ा। वहाँ जाकर द्रौपदी वेषधारी भीमसे आलिङ्गन करनेको ज्योंही अपनी भुजा फैलायी कि भीमने उसे अपने हृदयसे लगा कर जोरसे दबा दिया। अब तो वह चेतना रहित हो धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़ा। कुछ समय बाद जब उसे होश हुआ तो भीमको पहचानकर नमस्कार किया और अपने किये पापका प्रायश्चित्त करनेके लिये उसने जिनदीक्षा ग्रहण की।

इस प्रकार विराट नगरमें अज्ञातबास कर पाण्डवोंने बारह वर्ष बिताये तत्पश्चात् वे द्वारिकामें जाकर श्रीकृष्णसे मिले। श्रीकृष्णने अपनी बहन सुभद्राका

पाणिग्रहण अर्जुनसे कराया। श्रीकृष्ण स्वयं पाण्डवोंका दूत बन कर कौरवोंके पास गये पर कौरवोंने युद्धके विना सूईके अग्र भाग भी पृथ्वी देनेसे इनकार किया। यद्यपि श्रीकृष्णकी यह हार्दिक इच्छा थी कि युद्ध न हो पर "लिखित-मपि ललाटे प्रोञ्झितुंकः समर्थः।" अर्थात भाग्यमें लिखी हुई बातको कौन टाल सकता है। अतः कौरव-पाण्डवमें घमासान युद्ध शुरू हुआ और अन्तमें सत्यकी विजय हुई। होता भी वही है। चारों ओर 'सत्यमेव जयते नानृतम।' इस प्रकार राज्य पाकर पाण्डव स्वतंत्र हो राज्यलक्ष्मीका उपभोग करने लगे।

एक दिन पांडवोंकी सभा भरी थी। सब भाई परिवर्तनशील संसारमें दुःखसे परिवर्तित सुखका उपभोग कर रहे थे। उसी समय नारद हाथमें वीणा लिए भगवानका गुणानुवाद गाते आ गये। आसन प्रदान और वचनो द्वारा उनका यथोचित सत्कार किया गया। कुछ देर बैठकर वे वहांसे उठे और सीधे द्रौपदीके महलकी ओर चले। जिस समय नारद वहां पधारे उस समय द्रौपदी स्नानसे निवृत्त होकर शृङ्गारमें लीन थी, अतः वह नारदको न देख सकी अब तो नारदके क्रोधका पारा १०५ डिग्री तक चढ़ गया। उन्होंने समझा कि इसने अपने रूपके घमण्डमें ही आकर मेरी अवहेलना की है, अतः मैं इसका मजा हाथोंहाथ चखाऊंगा। फिर तो वे वहाँसे उलटे पैर लौटे और पद्मराजकी राजधानी अमरकंका पुरीमें आये। वहाँ उन्होंने द्रौपदीका एक सुन्दर चित्र पट लेकर राजाको दिखाया। चित्रपटका देखना ही था कि राजा उसकी लावण्यतापर मुग्ध हो गये। राजाके पूछनेपर नारदने इसे अर्जुनकी प्रेयसी द्रौपदीका नाम बताया। अब तो द्रौपदीको प्राप्त किये बिना राजाको एक मिनट भी चैन नहीं। एक रातको राजा अगोचर विद्याके प्रभावसे द्रौपदीके महलमें जाकर उसे उठा लाया और अपनी पाशविक वृत्तिको शान्त करना चाहा। पर द्रौपदीने एक महीनेकी अवधि माँगी। अवधि भी मंजूर हो गई। इधर जब अर्जुनकी निद्रा भंग हुई और द्रौपदीको शय्यापर न देखा तो उनके आश्चर्य और दुःखका ठिकाना न रहा। पाण्डवोंने यह खबर श्रीकृष्णके कानतक पहुंचा दी। अब तो श्रीकृष्ण भी बहुत दुःखित हुए। सब कोई बड़े सोचमें पड़े। कोई उपाय तो दीख नहीं पड़ता था; करें तो क्या? पर उसी समय नारदकी

सप्तव्यसन चरित्र—
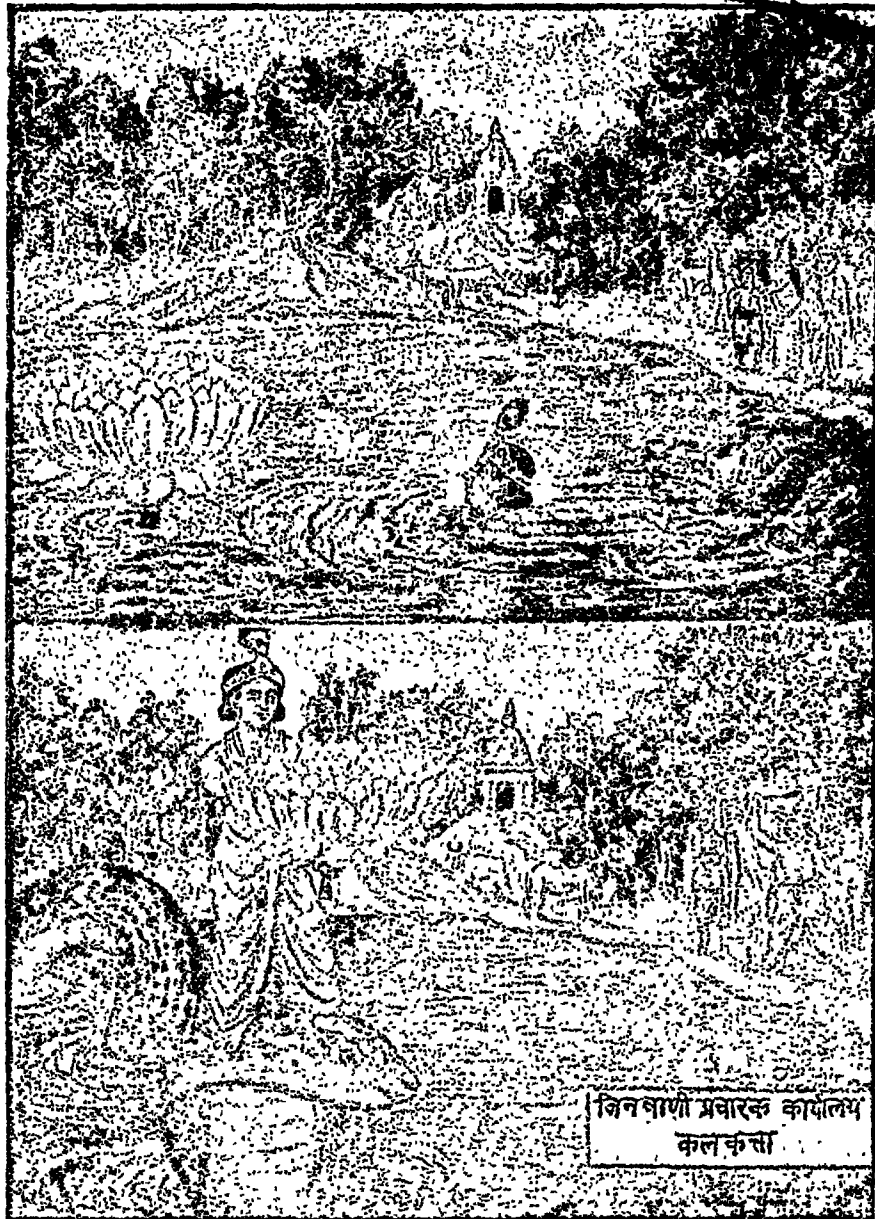
श्रीकृष्ण का सहस्र दल कमल तोड़ना

जवाहिर प्रेस, कलकत्ता।

सप्तव्यसन चरित्र

द्रोपदी पर नारद का कोप पृष्ठ १२

वीणाकी झनकार कानोंमें पड़ी। अब तो कृष्णके होशमें होश आये एवं पाण्डवोंकी भी सूखी नसोंमें रक्तका संचार हुआ। उन लोगोंको अब कुछ आशा हो गयी कि यह पता नारद हीके द्वारा लगेगा। कारण कि वे सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डलपर परिभ्रमण करनेवाले अवधज्ञानी हैं। बात भी सत्य ही निकली। कृष्णके पूछनेपर नारदने कहा—"मैंने तो उसे धातकी द्वीपान्तर्गत अमरकंका नगरके राजा पद्मराजके महलमें देखा था। वहां जाना तो बहुत ही कठिन है क्योंकि उसके मार्गमें समुद्र पड़ता है।" इतना कहकर नारद वहांसे चल दिये। इधर कृष्ण और पाण्डवोंने बड़ी भारी सेना लेकर अमरकंकापर धावा बोल दिया। मार्गमें समुद्र पड़नेके कारण सेना तो उस पार नहीं जा सकी पर कृष्णके साथ पांचों पाण्डव रथ द्वारा समुद्र पार कर गये। जब उनके आगमनकी सूचना पद्मराजको मिली तो वह भी अपनी अगणित सेना ले रणभूमिमें आ डटा। घमसान युद्ध प्रारम्भ हुआ। कृष्ण और पांडवोंने शत्रुकी सब सेनाको तितर बितर कर दिया। अन्तमें वह राजा स्त्रीका वेष धारण कर द्रौपदीको साथ लेकर श्रीकृष्णकी शरणमें आया और "त्राहि-त्राहि कर पैरपर गिर पड़ा। श्रीकृष्णने उसका अपराध क्षमा कर गले लगाया।

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण और पाण्डवोंने सात दिनतक राजाका आतिथ्य स्वीकार किया। बादमें जब वे लोग वहांसे रवाना हुए तो समुद्रके किनारे आकर ठहरे। वहींपर श्रीकृष्णने अपना पांचजन्य शंख बजाया। उसके आवाजसे दिग्गज दहल उठे, पृथ्वी थर्राने लगी और समुद्रके जल हिलोरे लेने लगा। वहांपर जिन भगवानके समोशरणमें उस द्वीपके नारायण बैठे हुए थे। उन्होंने भगवानसे पूछा—"नाथ! हृदयको दहलाने वाली यह किसके शंखकी ध्वनि है?" भगवानने श्रीकृष्ण नारायणका परिचय दिया। वहां आनेका कारण पूछनेपर जिन भगवानने नारायणसे उसका सब कारण आद्योपान्त कह सुनाया। सुनकर नारायणको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने उस दुष्ट राजाको राज्य से निकाल दिया। पुनः नारायणने जिन भगवानसे प्रार्थना की कि भगवन्! मेरी अभिलाषा श्रीकृष्णसे मिलनेकी है। पर भगवान्ने कहा—"तुम्हें मिलना उचित नहीं। कारण कि तीर्थंकर, चक्रवर्त्ती, वलभद्र, नारायण और प्रति

नारायण इन लोगोंका पारस्परिक सम्मिलन नहीं होता है। इसके पारस्परिक सम्मिलनसे कुछ भी लाभ नहीं अतः तुम्हें उनसे परोक्ष भेंट करके ही सन्तोष करना चाहिये और इस परोक्ष दर्शनका फल यातो तुम्हें उनकी ध्वजा दर्शन-से ही हो सकता है या उनके शंख ध्वनिको ही सुनकर।" उधर श्रीकृष्ण भी भगवानका वचन पालन कर समुद्र पार जानेकी तैयारी करने लगे। देखते ही देखते रथकी तीव्र गतिने समुद्रके दूसरे पार ले जाकर उन लोगोंको पहुंचा दिया। वहाँपर पाँडव रथ छोड़ पैदल ही चलने लगे और श्रीकृष्ण पीछेसे रथमें द्रौपदीके साथ रह गये।

इस प्रकार पाण्डव श्रीकृष्णसे बहुत आगे बढ़ चले। मार्गमें उन्हें गगन चुम्बिय नागाधिराज, हिमालयसे प्रवाहित मन्दाकिनीका प्रवाह मिला। वहां एक छोटी-सी नौका थी जिसके सहारे वे पार हो गये और श्रीकृष्णकी शक्तिका परिचय लेनेके लिये उसे जलमें डुवा दिया। जब कृष्ण आते हैं तो देखते हैं कि, गंगामें नौकाका नामोनिशान नहीं, अब तो बड़े फेरमें पड़े। अन्त तो गत्वा वे द्रौपदीको रथसहित बांये हाथपर लेकर दाहिने हाथसे जलके प्रवाहको विदीर्णकरते हुए गंगाको पार कर गये। आगे जाकर पाण्डवोंसे मिलनेपर क्रोधमें आकर अपनी पूर्वकृत शक्तिका परिचय देते हुये उन्होंने पाण्डवोंको खूब फटकारा। पाण्डवोंने तो की थी हँसी पर "झगड़ेकी जड़ हाँसी और रोगकी जड़ खांसी' ने अपना प्रचण्ड रूप धारण किया। क्रोधके आवेशमें सौजन्यताका चिह्न लुप्त हो जाता है। अस्तु उन्होंने पाण्डवोंसे कहा—"जहांतक मेरा राज्य है वहांतक ठहरनेका तुम्हें कुछ अधिकार नहीं। अतः तुम लोग शीघ्र मेरे राज्यसे निकल जाव।" श्रीकृष्णके वचन सुनते ही गौरवान्वित पाण्डवोंने उन्हें नमस्कार कर दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थान कर दिया। उधर जाकर उन लोगोंने दक्षिण मथुराकी नींव डाली। सच है:—धर्मके आधारपर स्थित वसुन्धरापर धर्मात्मा-ओंको कहीं भी दुःख नहीं भोगना पड़ता।

इस प्रकार वीर भगवानने श्रेणिकसे कहा—"राजन! देखो, जुआके दुर्व्यसन रूपी पंकमें फँसनेके कारण ही पाण्डव सरीखे प्रबल कीर्तिवान, वीर्य-वान, एवं धैर्यवानोंको भी हृदय विदारक दारुण दुःख सहने पड़े। इस जुएके

चसकेने ही निषध देशके राजा नलको दुःख चषक पिलाया, राज्य भ्रष्ट किया, यहाँतक कि दूसरेका रथ वाहक भी बनाया। यह सब जुएका फल है; यह धर्मी को विधर्मी, ज्ञानीको अज्ञानी एवं बलवानको निर्बल बनाने वाला है। उसी जुएने सत्य प्रतिज्ञ महात्मा युधिष्ठिरको भी नरकका दिग्दर्शन कराया, बलवान गुरु द्रोणाचार्य एवं भीष्मकी हत्या कराई और वीर भोग्या वसुन्धरा को भी वीर रहित किया। अतः यदि इस लोक और परलोकमें सुख सम्पत्तिकी इच्छा रखते हो तो पदारूढ़ स्वर्ग सोपानसे नीचे गिराने वाले इस दुर्व्यसनका सर्वथा परित्याग करो और वास्तविक सुखका मूल साधन जैन धर्मका ग्रहण करो। जिस भांति शरद ऋतुमें हंस माला स्वयं गङ्गाको प्राप्त होती है। जिस प्रकार रात्रिमें औषध-लताओंमें आलोक माला स्वयं उदय होती है तथा जिस भांति मेघका शब्द होनेसे विदुर पर्वतकी प्रान्त भूमि उद्विग्न उज्वल कान्ति विशिष्ठ मणि समूहसे स्वयं शोभित होता है:—उसी प्रकार जैन धर्म ग्रहण करनेसे मनुष्यके हृदयमें सदाचार एवं ज्ञानरूपी दीपक स्वयं प्रज्वलित हो अज्ञानान्धकारको दूर भगा देता है। अस्तु "बोलो जैन धर्मकी जय।"

द्वितीय मांस व्यसन कथा।

श्वास श्वास पर खैर को, चाहैं सकल जहान।
श्वास नाशकर होत है, मांस महा दुख दान॥
मांस महा दुख खान खानकी बात सुनत घिन आवे।
थरहर कांपे काय, हाय पशुदीन बड़ा घबड़ावे॥
बे कसूर पशु मांस लालची तनमें छुरी चलावे।
बड़े निर्दई जीव जगत में, आमिष भोजन खावें॥

णिक रजाने गौतम गणधरसे पूछा—"भगवन, द्युत व्यसनके रोमाञ्चकारी चित्रका वर्णन तो आपने किया पर अब मांस भक्षण करने वालेके विषयमें सुननेका मुझे कौतूहल उत्पन्न हो रहा है। अतः कृपाकर इसका वर्णन कीजिये। तब गणधर बोले—"श्रेणिक" तुम ध्यान देकर सुनो। इसके श्रवण मात्र से ही मनुष्यके पापका चतुर्थांश भाग नष्ट हो जाता है। कारण—कि आचरणके

पूर्व श्रवण की ही प्रधानता है। जब तक किसी विषयको कोई पठन या श्रवण नहीं करे तब तक उसको ज्ञान नहीं होता। सुनो! भारतवर्षके मनोहर नामक देशके अन्तर्गत कुशाग्र नामक एक सुन्दर नगर था वहां भूपाल नामक राजा था। भूपाल अपनी विदुषी महाराणी लक्ष्मीवतीके साथ सानंद भू पालन करते थे। उनके एक पुत्र भी था, जिसका नाम था बक। बक बक ही सा मीन मांस लोलुपी था। प्रतिवर्ष आष्टाह्निका पर्वके आनेपर राज्यके द्वारा महोत्सवका प्रबन्ध किया जाता था। महोत्सवके समय राजाकी ओरसे यह घोषित कर दिया जाता था कि यदि शहरमें कोई भी पुरुष जीव हिंसा करेगा तो वह राज्यदण्डका भागी होगा। दूसरेकी बात तो जाने दीजिये प्रथमतः तो स्वयं राजकुमार ही अत्यन्त मांस-लोलुपी था। उसने पितासे बहुत आग्रह किया कि पिताजी, मुझसे तो मांसके बिना रहा ही नहीं जा सकता। अतः कृपाकर मुझे आज्ञा दीजिए। पुत्र द्वारा अत्यन्त आग्रह करनेपर केवल एक जीवको मारकर उसीके मांससे अपनी लोलुपता शान्त करनेकी आज्ञा मिली। एक बार आष्टाह्निक पर्वका समय था। रसोइयेने भोजनकी सामग्रियोंमें मांस भी तैयार किया। पर ज्यों ही वह किसी कार्य वश भोजनागारसे बाहर निकला कि एक बिल्ली चौकेमें घुस गयी और मांसको लेकर नौ दो ग्यारह हुयी। जब रसोइया लौटकर आया तो देखा कि मांस नदारत है। अब तो उसके होश हवाश ठिकाने आ गये। वह मांसकी खोजमें शहरसे बाहर श्मशान घाटमें गया। वहांसे वह मरे हुये एक छोटे बच्चेको पृथ्वीसे उखाड़कर लाया और उसीका मांस तैयार किया। भोजनके समय राजकुमारके आगे थाली रखी गयी। उसे उस दिनका मांस अन्य दिनोंके बनिस्पत अत्यन्त स्वादिष्ट मालूम पड़ा। राजकुमारके अत्यन्त डराने धमकाने पर भी जब रसोइयेने सच्ची बात नहीं बतायी तो राजकुमारने कहा—"सच सच बता दो, यह किस चीजका मांस है। सच बतानेपर मैं तुझे दण्ड नहीं दूंगा" रसोइयेने सब कथा शुरूसे अन्त तक कह सुनायी। राजकुमार मांसके स्वादिष्टसे बहुत प्रसन्न हुआ और कहा कि तुम नित्यप्रति अब मनुष्यका ही मांस बनाकर मुझे दिया करो। इसके लिये जो रुपया खर्चा होगा मैं तुझे दूंगा। अब तो रसोइया रुपयोंके

लिये लगा बालहत्या करने। वह प्रति दिन शाम सबेरे बचोंके क्रीड़ास्थलपर खानेकी स्वादिष्ट चीजें ले जाता और बचोंमें बांटता फिर इधर उधरकी आँख बचाकर झट किसी बच्चेको वस्त्रमें छिपा उसका गला घोंट देता था। इस प्रकार वह बचोंको मार मार कर उनके मांससे आसुरी प्रवृत्तिवाले राजकुमारको प्रसन्न करने लगा। इस तरह दिनों दिन बच्चोंकी घटती संख्या देखकर नागरिकोंके मनमें पता लगानेकी चिन्ता बढ़ लगी। सभीने कोशिश की और पापका भंडा फूट पड़ा। रसोइया पकड़ा गया खूब घूसे लातोंसे उसकी पूजा की गयी। अन्तमें प्राण जानेके भयसे उसने सब बातें साफ २ लोगोंसे कहदी।

यह सुनकर लोगोंको राजाकी अनीत पर तरस आने लगा। नागरिकोंकी सभा जुड़ी और निश्चय हुआ कि ऐसे नृशंस राजाके राजमें रहने ही से क्या लाभ जो प्रजाको पालन करने वाला नहीं वल्कि भक्षण करने वाला है। मनुष्य केलिये सम्पूर्ण धन ऐश्वर्यके रहते हुये भी बालकके बिना उसी प्रकार सूना लगता है जिस प्रकार चन्द्रमा रहित गगन मण्डल। पिता माताके लिये देखो। प्राण पुत्र दोऊ एक समान हैं अस्तु, जहां पुत्र ही नहीं वहां जीवनसे क्या लाभ? तदन्तर प्रजाने वक को राजगद्दीसे उतार दिया, अब वक राज्य भ्रष्ट हो कर इधर उधर घूमने लगा। उस नगरके बाहर एक घना जङ्गल था। वहीं उसने अपना अड्डा जमाया और श्मशान घाटके मुर्दोंकी खोज में रहने लगा। अब वह मनुष्य रूपमें राक्षस हो गया। जङ्गलमें विचरने लगा। पाप की प्रवृतिसे उसका ज्ञान भ्रष्ट हो गया। अब वह अधर्मको ही धर्म एवं क्रूरताको भी सूरता समझने लगा। उसे अब न तो वस्त्रका ख्याल रहा न शय्या का। अब वह जिस जीवको पाता जीता हो या मरा। सड़ा हो या गला उसे ही चट कर जाता। अब उसे ही वह स्वर्गीय भोजन समझने लगा।

इस प्रकार से घूमते घूमते उसकी वसुदेवसे भेंट हो गयी। वसुदेवको अकेला देखकर वह उन पर लपका। पर वसुदेवने उसे देखते ही देखते इतने जोरसे पृथ्वी पर दे पटका कि उसके प्राण पखेरू उड़ गये। अब वक मरकर सातवें नरकमें गया जहां जीवको अत्यन्त दारुण दुःख सहने पड़ते हैं। वहां तो—सूरजकी गम नाहीं, पवनकी पहुंच नाहीं है—यों तो नरक मात्र में ही

दुःख भोगने पड़ते हैं परन्तु सातवें नरकमें जो दुख भोगना पड़ता है वह तो श्रवण मात्रसे ही प्राणीको रोमाञ्चित एवं कम्पित कर देता है। यहाँ पर नरक गामीको जब प्यास लगती है तो असुर लोग उसके शरीरसे रक्त निकाल कर उसे पिलाते हैं; और जब वह प्यासकी तृप्तिका झूठा बहाना करता है तो उसके पीठ पर लोह दण्डोंकी मार पड़ती है। इसी प्रकार भूख लगने पर उसके शरीरका मांस काटकर खिलाया जाता है। जीते जी उसे आगमें भूना जाता है तथा तिल की तरह लोहेके कोल्हुमें पेरा जाता है। इस प्रकार अनेकानेक यातनाओं द्वारा उसे अपने कियेका प्रायश्चित भोगना पड़ता है।

अस्तु, नृशंसात्मक कार्यके फलको याद रखो। भाइयो, अब भी समय है सुधारनेका, वरना पीछे पछताना पड़ेगा। जिह्वाके क्षणिक स्वादके लिये लोलुपता का परित्याग करो, त्याग करो उस निन्द्य कर्म का जिसके द्वारा तुम्हें नरककी यातनाओं का भोग भोगना पड़े। याद रखो, आहार निद्रा, भय, मैथुन, सुख, दुख क्रोध एवं लोभकी मात्रा जितनी तुम में है उससे लेशमात्र भी कम अन्य प्राणियों में नहीं। अनुभव करो कि तुम्हारे शरीरमें यदि कांटा चुभ जाता है तो तुम्हें कितनी वेदना होती है। ठीक वैसी ही हालत मछली, वकरे, शूकर तथा हिरणादिकी भी है। अतः समझदारो तिलाञ्जलि देदो मांस भक्षणकी भाइयो, नियम करलो मांस भक्षणके घृणास्पद व्यवहारका। फिर देखो सात्विक भोजनसे सात्विक बुद्धिका फल अवश्य ही मोक्ष पदको तुम्हें पहुंचायेगा।

क्या वककी निन्दनीय कीर्ति और उसके दुष्परिणामसे अब तक तुम्हारी आंखें न खुलीं? यदि नहीं तो आंखोंसे अज्ञान रूपी चश्मेको हटादो वकके चरित्रसे देखो तो ज़रा, पहले तो संसारमें मानव जन्म ही पाना दुस्तर है फिर उत्तम कुल और राज्य पाना तो और भी कठिन। याद रखो, यदि इस जन्ममें कुछ पुण्य करोगे तब तो स्वर्ग मोक्षादि पद प्राप्त होंगे और यदि यहांसे गिरे तो पुनः चौरासी लाख योनियों में करोड़ों वर्ष भ्रमण करना पड़ेगा। अतः सब पापोंका मूलकारण एवं अशास्त्र विहित, निन्द्य मांसका परित्याग करनेकी भीष्म प्रतिज्ञा करलो। अस्तु, बुद्धिमानोंको चाहिये कि अहिंसा धर्मके मूल प्रतिपादक

जिनधर्मको ग्रहण करें। यही उनके कल्याणका साधन है। यही सांसारिक दुःख समुद्रसे पार कराने वाली तरण तारणी है।

तीसरी मद्यव्यसन कथा।

जितने नशे जहानमें सभी विनाशै ज्ञान।
तिनमें मदिरा अति बुरी, सही गमावे प्रान॥
सही गमावे प्रान ज्ञानका नाम न रहने पावे।
मदिरा पीके मनुष होशमें, कबहूं नाहिं रहावे॥
जननी भगनी नार ना जाने मद मातुर हो जावै।
अति बेहोश पड़ा दुःख भुगते; मूरख प्रान गमावे॥
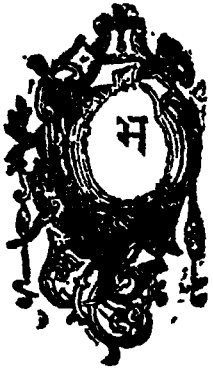
भगवान गणधरने राजासे कहा—"राजन्! अब तुम दत्तचित्त हो मदिरा पान करने वालोंकी दुर्गति श्रवण करो, यह भी प्राणियोंको कल्याण देनेवाली है।" श्रेणिक राजाने कहा--"भगवन्! मैं अपनी सब मनोवृत्तियोंको खींचकर उसी प्रकार आपका उपदेश श्रवण करता हूँ जिस प्रकार बंशीरवसे मुग्ध सारंग। अतः आप कृपया अपना उपदेशामृत टपकाकर मेरे कर्णपुटकी तृप्ति करें।"

भगवान गौतम बोले—सुनो, भारतवर्षमें कौशल देशके अन्तर्गत सौरपुर नामक एक परम रमणीय नगर था। वहांके राजाका नाम समुद्रविजय था। समुद्रविजय अपने विद्यावलके द्वारा सम्पूर्ण यादवोंमें श्रेष्ठ गिने जाते थे। इनके छोटे भाईका नाम था वसुदेव। वसुदेवके नामकी पताका भी सम्पूर्ण पृथ्वीके कोने कोनेमें फहराती थी।

उस समय मथुराका राजा कंस था। कंसकी एक छोटी वहन थी जिसका नाम था देवकी। जब देवकी पूर्ण वयस्का हुयी तो कंसने उसका विवाह वसुदेवसे कर दिया। एकदिन अति मुक्तक नामके मुनि, जो कंसके छोटे भाई थे आहारके लिये कंसके घर तक पहुंच गये। उनको आते हुए देख कर कंसकी प्रधान रानी 'जीवंयशा' ने देवकीका मलिन वस्त्र दिखा कर मुनीसे हंसी की--"जिसका तुमने वाल्यावस्था ही में परित्याग कर दिया था उसीका

यह वस्त्र है।" वस्त्र देखकर मुनिका क्रोध तो चरम सीमा तक पहुंच गया। उनके नेत्रसे क्रोधाग्निकी ज्वाला लपटने लगी। वे बोले---"अज्ञे, क्या तुम मेरी हंसी उड़ाती हो? क्या तुम्हें मालूम नहीं कि इसी देवकीके गर्भसे उत्पन्न बालकके द्वारा तेरे पिता और पतिकी मृत्यु होगी?" इतना कहकर मुनी तो अन्तराय हो जानेके कारण वापिस लौट आये और उधर जीवंयशा-की आंखोंसे आंसूके एक एक कतरे सौ सौ टुकड़े हो कर पृथ्वी पर गिरने लगे। इतनेमें कंस भोजनके लिए आया और प्राणप्यारीकी अवस्था देख व्याकुल हो उठा। उसने वस्त्रसे आंसूओंको पोछते हुये पूछा---"प्रिये, मेरे जीते जी तुझपर कौन सी ऐसी विपत्ति पड़ गयी जिससे तूं रो रही है? जरा बता तो सही। क्या किसीने तुझे कुछ दुःख तो नहीं पहुंचाया है इस तरह कंसके अत्यन्त आग्रह करने पर जीवंयशाने आद्योपान्त मुनिकी बातें कह सुनाई।" वल्लभाकी वात सुनकर कंस भी चिन्तासे व्याकुल हो गया। अब तो वह देखते, सुनते, खाते पीते, सोते जागते, उठते बैठते यानी सब समय अपनी मृत्युका प्रतिविम्ब देखने लगा। शोचसे शरीरमें रक्त और मांस रहित चर्म परिपयुत केवल अस्थिपञ्जर ही दिखाई पड़ने लगा। मृत्युसे बचनेका वह अनेकों मार्ग ढूंढ़ने लगा, पर कोई भी निष्कंटक नहीं मालूम पड़ता था। अन्तमें वह एक दिन वसुदेवके घर पर गया। वसुदेवने अति आदर पूर्वक उसका खूब सत्कार कर उसके आनेका कारण पूछा। कंसने विनम्र भावसे कहा—"मेरी इच्छा है कि मेरी वहनकी प्रसूति मेरे घर पर ही हुआ करे।"

वसुदेवने यह प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। कंस भी कृत्य कृत्य हो अपने घरको रवाना हुआ। अब कंसके आग्रहका कारण वसुदेवको ज्ञात न हुआ तो वे उसी समय देवकीके साथ रथमें बैठ कर बनमें मुनिराजके पास गये। अहा! वहांकी क्या ही रमणीय छटा थी। कहीं तो मृगीके नवजात बच्चे मृगेन्द्रके बच्चोंके साथ सिंहनीके स्तनसे दूध पी रहे थे, कहीं हाथीके बच्चे सिंहके बच्चेके गलेमें अपना सूंढ़ लपेट कर प्यार दिखला रहे थे, कहीं विषधर सर्पके फण पर मयूर उड़ उड़कर बैठते थे; कहीं मृगी अपने सींगोंसे

मृगोंके नेत्र कोणको खुजला रही थी, कहीं हरिणके बच्चे प्राङ्गणमें विखेरे हुए निवार कणकी चवा रहे थे तो कहीं फल पुष्पसे लदे हुये ऊर्ध्वगामी वृक्ष विद्या विनयसे भूषित गुणी जनके समान नम्र होकर मानो पृथ्वी पर आसन जमाये हुए मुनीराजको प्रणाम कर रहे थे। अर्थात् वनके सब हिंसक जन्तु अपना अपना पारस्परिक द्वेष त्याग मुनिराजके तप प्रभावको मूकभावसे बता रहे थे। वनकी शान्तिमयी छटा देखकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुये। वे मुनिके पास जाकर सदम्पति प्रणामकर बैठ गये। कुछ देर बाद मुनिको प्रसन्न देखकर राजाने अपने आनेका कारण बताते हुये कहा—"प्रभो! आपने जो जो बातें जीवंयशासे कहीं है उसे सुननेकी मेरी उत्कट अभिलाषा है अब कृपा कर मुझे भी सुना दीजिये। क्योंकि ऋषी मुनियोंके बचन कभी भी झूठे नहीं होते।

मुनिराजने वसुदेवसे कहा—'राजन्! तुम्हारी भार्याके तीन पुत्र युगल उत्पन्न होंगे। और जब जब वे उत्पन्न होंगे तब तब कौसाम्बी नगरीमें वृषभदत्त सेठकी स्त्रीके गर्भसे भी जो इनकी पूर्व जन्मकी माता है। तीन जुगलपुत्र उत्पन्न होंगे, पर वे मरे हुए होंगे। अतः देवता तुम्हारे जीवित पुत्रोंको लेजाकर वृषभदत्तके यहां रख आयेंगे और सेठके मरे हुए पुत्रोंको तुम्हारी भार्याके समीप रख जायेंगे। अस्तु, तुम्हारे जो पुत्र उत्पन्न होंगे वे नियमसे चरम शरीरी (उसी भवसे मोक्ष जानेवाले) होंगे। इसलिए तुम पुत्र-वियोगके दुःखसे दुःखित मत होना। पुनः चौथे गर्भसे शत्रुकुलका नाश करने वाला सातवां पुत्र 'जनार्दन' (श्रीकृष्ण) होगा। याद रखो कि तुम्हारा वही पुत्र, जनार्दन जरासंध और कंसको मार कर 'जनार्दन" होगा। इस प्रकार वह प्रवल प्रतापवान् तीन खंडका स्वामी होगा। वसुदेव मुनिराजका बचन सुन अत्यन्त हर्षित हुए। भावी पुत्रका गुण सुनकर देवकी और वसुदेवकी आंखोंमें हर्षाश्रु छा गये। वे पुनः मुनिवरको नमस्कार कर अपनी राजधानीमें लौट आये। उसी समयसे कंस और वसुदेव आपसमें अनवन रखने लगे। कुछ समय बीतने पर देवकी गर्भवती हुयी। जब गर्भ सात महीनेका होगया तो कंस देवकीको वसुदेवके यहांसे अपने यहां लिवा लाया। प्रसवके दिन

पूरे हुए। देवताओंकी प्रेरणासे इधर देवकीके भी दो सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुए और उधर वृषभदत्तकी स्त्रीके भी।

पुत्रका पृथ्वीपर गिरना ही था कि देवता तुरन्त लेजाकर वृषभदत्तकी स्त्रीके पास रख आये और उसके उसी समय उत्पन्न हुए दो मृतक पुत्रोंको देवकीके पास लाकर रख गये। जब कंसको देवकीके पुत्र होनेका समाचार मिला तो वह शीघ्र ही आया और निर्दयतापूर्वक दोनो मृतक पुत्रोंका पैर पकड़ पत्थर पर दे पटका। कंसकी इस निष्ठुरता पर देवकी और वसुदेवको बहुत दुःख हुआ। इस प्रकार पापी कंसने तीनों मृतक जुगल पुत्रों पर अपनी निर्दयता दिखाई।

इस प्रकार ज्यों त्यों करके दुःखित देवकी और वसुदेवका दिन बीतता रहा। एकदिन रातके अन्तिम प्रहरमें देवकीने स्वप्नमें केसरी, गजराज, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, समुद्र कमल और भवनवासी देवोंका स्थान ये आठ चीजें देखीं। स्वप्न देखते ही वह जाग पड़ी और प्रातः काल होते ही नित्य-क्रियासे निवृत हो पतिके पास जाकर स्वप्नका सब हाल ज्योंका त्यों कह सुनाया। वसुदेव सुनकर बहुत हर्षित हुए। वसुदेवने उसका फल यों कहा-'प्रिये, आज ही रात्रिमें तेरे गर्भको पवित्र करने वाले, पुत्रके नामको सार्थक करने वाले तथा शत्रु कुलका नाश कर पिताका दुःख दूर करने वाले नवमे वसुदेवका अवतार हुआ है। सुनकर देवकीको हर्ष और चिन्ता दोनों एक ही साथ हुई। पर वसुदेवने देवकीको बहुत समझाया बुझाया कि चिन्तित होनेकी आवश्यकता नहीं। देवता लोग इसकी भी रक्षा करेंगे। कंस तो इधर अंगुली पर दिन गिना करता था। अबकी वार ज्यों ही गर्भ पाँच महीने-का हुआ कि कंस आकर पुनः देवकीको अपने यहां ले गया। कंसको तो मृत्युके डरसे 'शशिरिपु वर्ष भानुरिपु युग सम' बीतता था कंसके घर आये देवकीको दो महीने हो गये। कंसकी नृशंसतासे यद्यपि देवकीका शरीर दिनों दिन सूखा जाता था तौ भी मुख मण्डलसे पीले कान्तिकी झलक निकलकर चम्पाको लज्जित कर रही थी। भादोंका महीना था। कृष्णपक्षकी अष्टमीको अंधेरी रजनीमें जल परिपूर्ण श्याम बादल क्षितिजको स्पर्श कर रहे थे। बादलकी गरज एवं बिजुलीकी तड़क प्रोषित भर्तृकाओं एवं प्रवासी

पुरुषोंका दिल तोड़ रहे थे। देखते ही देखते मूसलधार वर्षा शुरू हो गयी। उसी समय देवकीने रोहिणी नक्षत्रमें सुन्दर शुभ लक्षणोंसे युक्त पुत्र रत्न प्रसव किया। उसने अपनी अनुचरी द्वारा यह गुप्त सम्वाद वसुदेवके पास पठाया। सुनते ही वसुदेव झट प्रसूतिगृहमें आये और बालकको लेकर छिपे हुए निकल गये। ये दोनों गलियोंसे इस प्रकार पाँव दबाये निकले कि किसीको भी आहट न मिली। जब ये दरवाजेके पास पहुंचे तो बालकके पांवसे छूते ही किवाड़ खुल गया। कुछ ही आगे ये बढ़े थे कि पुत्रके नाकमें पानी का एक छींटा पड़ गया। इससे उसे छींक आगई। छींकका शब्द कारागारमें पड़े हुए कंसके पिता उग्रसेनके कानमें पड़ा। सुनते ही उन्होंने बच्चेको शुभाशिर्वाद दिया कि—"आयुष्मान् भव। यह सुनकर वसुदेव तुरंत उग्रसेनके पास गये और इसे गुप्त रखनेके लिए प्रार्थना करने लगे। उग्रसेनने प्रीतिपूर्वक धैर्य्य बंधाया और कहा कि ले जाकर इसकी रक्षा करो। कारण कि इसीके द्वारा मैं भी बन्धनसे विमुक्त होऊंगा।

नगरसे बाहर पके जम्बुफलके समान श्याम जलसे परिपूरित जमुना नदी बह रही थी यों तो भादोंकी रात स्वयं ही डरावनी होती है फिर भी जहां काले बादलकी उमड़ हो उसकी तो बात ही न पूछिए। पर यहीं तक आपत्ति का अन्त नहीं है। अब जरा आगेका हाल सुनिये धीरे धीरे वसुदेव कृष्णको गोदमें लिये नदीके किनारे पहुंचे। वहां पर का दृश्य तो और भी भयानक था जमुना अपने कलकल शब्दसे भीषण रव करती तथा किनारोंको तोड़ती हुई अति तीव्र गतीसे प्रवाहित हो रही थी। नदीमें इतने जोरसे हिड़ोल उठ रहे थे कि एक तिनकेके सौ सौ टुकड़े हो जाते थे। देखते ही वसुदेवका हृदय दहल गया। अब तो पुत्रकी आशा जाती रही। पर मुनिराजके वचन स्मरण आये उन्होंने धैर्य धारण कर जलमें पैर बढ़ाया। वहां बच्चेके पैरसे छूते ही जल सूखकर घुटने तक हो गया। वसुदेव सकुशल नदी पार कर गये। नदीके पार वृन्दावनमें नन्द नामका एक ग्वाला रहता था। उसकी स्त्रीका नाम था यशोदा, नन्द वसुदेवका मिलाप हुआ नन्दके उसी दिन एक पुत्री हुयी थी। नन्दने वसुदेव से कहा आप निश्चित रहें, इसकी खबर कभी कंसको न मिले

अच्छा होगा कि आप मेरी नव जात बालिकाको ले जांय। कारण कि कंस पुत्री देख कर किसी प्रकार विघ्न न करेगा। और यदि अभी जाहिर हुआ तो हमारी हानि है। यदि यह पुत्र कुशल पूर्वक जीवित रहेगा, तो मैं समझूंगा, कि मेरे अनेकों पुत्र पुत्रियां हैं।

यह सुनकर वसुदेवकी अन्तरात्मासे धन्यवादका मूक शब्द उच्चरित होने लगा उनकी आत्मा कहने लगी कि धन्य हो नन्द, धन्य हो जैसा तुम्हारा नाम है वैसा गुण भी है तुम मेरे इस आपत्ति रूपी जमुनाको पार कराने वाले तटपती नौका के सदृश हो! आपत्ति एवं भयसे रक्षा करनेके सम्बन्धसे तुम मेरे पिता तुल्य हो। अस्तुः आ, नन्द, आ, आनन्दसे मैं तुझे गले लगाऊं।" इस प्रकार हृदयमें प्रेमोद्‌गार तो उठता था पर अत्यधिक प्रसन्नतासे गला रुंध गया अन्त में वे आँखमें आंसू भर कर अपनी प्रसन्नताको व्यक्त करते हुए पुत्रीको लेकर लौट आये। पुत्रीको देवकीके पासमें छोड़कर आप स्वयं अपने स्थान पर चले गये। जब कंसको यह पता चला तो आकर बेचारी लड़कीकी नाक काटकर छोड़ दिया कुछ दिन बाद देवकी पुनः अपने घर चली गयी। इधर ज्यों ज्यों श्री कृष्ण गोकुलमें बढ़ने लगे त्यों त्यों कंसके घर भावी विनाश सूचक उपद्रव मचने लगा। यह देख कंसको बड़ी चिन्ता हुई उसने शीघ्र ही ज्योतिषियों को बुलाकर इसका कारण पूछा। ज्योतिषियोंने बताया कि बनमें तुम्हारे जीवन लीलाको पूरी करने वाला तुम्हारा कोई शत्रु चन्द्रकलाके समान दिनों दिन बढ़ रहा है इसी कारणसे इतना उपद्रव मच रहा है। यह सुन कंस को बड़ी चिन्ता हुयी। उसने कृष्णको मारनेके लिये पूतना, उदूखल शाल्कलीं और शंकर आदि कितने ही राक्षसोंको भेजा, पर सबके सब अपनी जानसे हाथ धो बैठे। श्री कृष्णके पठन पाठनका भार बलभद्रके ऊपर सौंपा गया था। वे प्रति दिन उन्हें पढ़ानेके लिये जाया करते थे। बलभद्र सर्वदा कृष्णके बलकी बात अपने बन्धु बान्धवोंसे कहा करते थे। अपने पुत्रकी प्रशंसा सुनकर कौन हृदयसे उल्लासित नहीं हो जाता? देवकी श्रीकृष्णकी बड़ाई सुनकर मनमें फूली नहीं समाती थी। उसे पुत्रके दर्शनकी बड़ी अभिलाषा थी। वह सर्वदा पुत्र-को छातीसे लगा ठंडा करना चाहती थी। एक दिन वसुदेव देवकीको अष्टमी

श्री कृष्ण रथ को बाये हाथ पर रखे हुए तैर रहे हैं पृष्ठ १४

श्री कृष्ण और बलराम का मुष्ठिक और चाणूर से मल्लयुद्ध पृष्ठ २७

ज्योति प्रेस कलकत्ता।
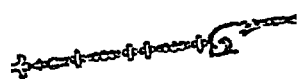
का प्रौषद् करवा कर पूजाके बहाने लिवा ले गये।

वहां देवकीने जिनेश्वरकी पूजाकी। गोकुलकी रमणीक छटा देखकर देवकी का मन अत्यन्त मोहित होगया। कहीं गौवोंके छोटे छोटे बछड़े पूंछ उठा कर दौड़ते हैं, कहीं बछड़ोंका अपनी माताके शरीर में सींग रहित माथोंसे मारनेका बहाना करते हुये प्रेम प्रदर्षित करना, कहीं बांसुरी बजाते हुए ग्वाल बालोंका नृत्य करना कहीं जल परिपूर्ण जलधरके शब्द की समता करने वाले दही मत्थनका शब्द, कहीं क्षीरसे परिपूर्ण शरीरमें धूली लपेटे हुए की शोभा देखते ही बनती थी। गोकुलमें ऐसा कोई जलाशय न था जिसमें कमल न हो, ऐसा कोई कमल न था जिसमें भौंरे न हों तथा ऐसे कोई भौंरे न थे जो अपने मधुर गुञ्जारोंसे पथिक के मन मोहते न हों। इसप्रकार गोकुलकी शोभा निरीक्षण करते हुए देवकी यशोदाके घर आई।

देवकीको देखते ही यशोदाने झट सुन्दर आसन लाकर बिछा दिया और भक्तिपूर्वक चरणोंमें शिर नवा कुशल क्षेम पूछने लगी। यशोदाने कहा—"बहन, जिस प्रकार सुन्दर उज्वलदीप शिखासे दीपककी सुन्दरता बढ़ती है, जिस प्रकार शुद्ध वाणीके प्रयोगसे विद्वान सर्वत्र आदर पाते हैं एवं जिस प्रकार महात्माओंके दर्शनसे आत्मा पवित्र हो जाती है उसी प्रकार आपके शुभादर्शनसे हम, हमारा कुल तथा हमारी ये गोकुल नगरी प्रान्त पवित्र होगयी। यह सुन देवकीने विनयवती यशोदासे कहा—प्रिये, मैंने सुना है कि तुम्हारे एक अत्यन्त प्रबल प्रतापी पुत्र रत्नने जन्म लिया है। क्या कृपाकर मुझे भी अपने पुत्रका दर्शन कराके पवित्र करोगी? इतना कहते ही यशोदा झट उठकर गयी और पुत्रको लाकर देवकीकी गोदमें बिठा दिया। देवकीने बड़े लाड़ प्यारसे पुत्रका माथा सुंघा और चिरञ्जीवी होनेका आशीर्वाद दिया। पुत्रको छातीसे लगाते ही माताके स्तनसे दूध चूने लगा। दूधके चूनेसे देवकीकी सारी कंचुकी भींग गयी। यह देख बलभद्रको बड़ाही आश्चर्य हुआ।

उस समय बहुतसे ग्वालवाल भी वहां उपस्थित थे। बलभद्रने देखा कि कहीं यह बात कंसके कानतक न पहुंच जाय। अतः उन्होंने शीघ्र दूधसे भरा एक घड़ा लाकर देवकीको स्नान करा दिया। यशोदा बोली—देवि,

गोकुलमें स्नान कराने योग्य कोई अन्य वस्तु न पाकर दूधसे ही स्नान कराना पड़ा है। तत्पश्चात् देवकी श्रीकृष्णको आशिर्वाद दे बलभद्रके साथ रथमें बैठ कर अपने घर चली आयी।

श्रीकृष्ण था तो बालक ही ? वह गोपियोंके साथ खूब क्रीड़ा किया करता था। वह कभी उनका वस्त्र खींच लेता था, कभी माखन मांगनेके लिए हाथ फैलाकर मार्ग रोकलेता था तथा कभी पीछेसे उनके मांथेसे दूध दहीसे भरी मटकी हो ढ़केल दिया करता था। इस प्रकार वह ज्यों ज्यों अपनी बालक्रीड़ा को समाप्त करते हुए बढ़ता जाता था ज्यों त्यों कंसकी चिन्ता भी दिनों दिन बढ़ती जाती थी। उसे न तो रातको नींद आती थी न दिनको भूख। पर अभी तक शत्रुका उसे कुछ पता न चला। एकबार उसने सब ग्वालबालोंको बुला-कर आज्ञा दी कि तुमलोग जाकर जमुना सरोवरसे कमल ले आओ। सुनते ही श्रीकृष्ण शीघ्र वहांसे जमुनाकी ओर चले। पीठ पीछे बलभद्र और अन्य ग्वाल-बाल भी चले। जमुनाके किनारे ग्वालबाल तो तमालकी छायामें बैठ गये कृष्ण तुरत पेड़पर चढ़कर धड़ामसे जलमें कूद पड़े। ग्वालबाल तो यह टकटकी लगाकर देख रहे थे कि अब निकला तब निकला पर कृष्ण तो कुछ देरके लिए जलमें निमग्न से हो गये। बालकोंको संदेह हुआ कि कृष्ण डूब गये। कुछ लड़के दौड़े और तुरंत गोकुलमें यह खबर पहुंचा दी। खबर पाते ही ग्वालबाल वृद्ध पिता सरोवरके किनारे आ गये। माता यशोदा भी छाती धुनते गिरती पड़ती किनारे पहुंच गयी। वह जलमें कूदकर प्राण गवाना ही चाहती थी कि मृत्युके भयने उसे डरा दिया। इधर कृष्णके लिए तो नगर-वासियोंमें चिघाड़ पड़ा हुआ था और उधर कृष्ण पातालमें जाकर सर्पराजसे प्रार्थना करते थे। थोड़ी देर बाद नागरिकों की आकुलता देख हाथमें कमल लिए जलको फाड़ते हुए श्रीकृष्ण किनारे पर आ खड़े हो गये। जैसे गाय अपने बछड़ेको देखते ही चूमने चाटनेके लिए दौड़ती है उसी प्रकार यशोदा, आंखमें आंसू भरे हुये दौड़ी और कृष्णको गोदमें उठा लिया। अब तो उसके हर्षका पारावार न रहा। तत्पश्चात् गोपग्वालियां श्रीकृष्णकी प्रशंसा करते हुए अपने २ घरको चलीं और बलभद्र अन्य बालकोंको साथ लिएहुए कंसके दरबारको चले।

राज सभामें पहुंच कर कृष्णने कंसको नमस्कार किया और कमल सामने रख दिया। अब तो कमल देख कंसका मुख कमल मुर्झा गया। फिर भी उसने कुछ सोचविचार कर ग्वालवालोंसे कहा--सुनों, मेरे यहां एक नागशय्या है। जो उसपर शयन करेगा उसे वह शय्या दे दी जायगी जो पुरुष मेरे सारंगके धनुषकी डोरी पर वाण चढ़ा लेगा उसे पारितोषिक स्वरूप वह धनुष दे दिया जायगा। तथा जो मेरे पांचजन्य शंखको वजा देगा उसे वह शंख भी दे दिया जायगा। कंसका कहना ही था कि कृष्णने तीनों समस्याओंको हलकर कंसको अपनी शक्तिका परिचय दे दिया। उसके वाद तीनों उपहारोंको लेकर कृष्ण बनकी ओर रवाना हुये।

अब तो कंस और भी चिन्तित हुआ। अतः उसने चाणूर और मुष्टक नामक अपने दो पहलवनोंको बुलाकर कृष्णका काम तमाम करनेको कहा। एक दिन पहलवानों की कुस्तीका दिन निश्चाय हुआ। जगह जगहसे पहलवान पहुंचाने लगे। कंसने यादवोंको भी लड़नेके लिये बुला भेजा। सब जादव कन्धेपर लट्ठ लिये देहमें धूली लगाये लड़नेके मैदानमें आ गये। श्रीकृष्ण भी ऐसे मौके पर चूकने वाले नहीं थे। वे भी बलरामके साथ निश्चित समयपर मल्लशालामें पहुंचागये। चाणुरके साथ कृष्ण और मुष्ठिक के साथ वलरामकी भिड़न्त होगयी। बहुत देर तक लड़ाई होती रही। अन्तमें कृष्ण और वलरामने क्रमशः चाणुर और मुष्टिकको तुच्छके समान धड़ाम से जमीन पर दे पटका। जमीन पर गिरनाही था कि उन दोनोंके प्राण पखेरू उड़ गये। जब कंसने देखा कि इन लोगोंने दो दुर्जय पहलवानों-को भी मार दिया तब तो उसके क्रोधका ठिकाना नहीं रहा।

तब कंस तुरत तलवार ले लाल २ आंखे कर कृष्णकी ओर लपका और बोला-"क्यों रे दुष्ट, क्या तुझे मालूम नहीं कि ये किसके पहलवान हैं। ये तुम्हारे साथ केवल लीलासे लड़ रहे थे। यदि तेरी दुष्टता उन्हें पहले मालूम होती तो वे अब तक उसका मजा चखा दिये होते। अस्तु, ठहर रे दुष्ट, ठहर, मैं शीघ्रही तेरी दुष्टताका बदला चुकाता हूं।" इतना सुनना ही था कि कृष्ण हाथी बांधनेवाले खम्भेको उखाड़ कर कंसपर टूट पड़े। यादव भी

युद्धके लिये तन गये। दोनों दलोंमें घमासान युद्ध हुआ। बहुतसे लोग मारेगये। अन्तमें श्रीकृष्णने कंसको खम्भेसे इस तरह मारा कि वह वहीं पञ्चत्वको प्राप्त हो गया।

जब कंसकी मृत्युका समाचार उसकी स्त्री जीवंयशाको मिला तब तो वह अगाध दुःखसमुद्रमें गोता लगाने लगी। तुरत रथपर बैठ अपने मैके आयी अपने पितासे सब समाचार कह सुनाये। वह राजगृहके राजा जरासंधकी लड़की थी। जरासंधने तुरंत ही एक बड़ी भारी सेनाके साथ अपने छोटे भाई अपराजितको यादवोंसे लड़नेको भेजा। बड़ी घमासान लड़ाई हुयी। अपराजित अपने नामकी असार्थकता साबित करते हुये पराजित हुए और मारा गया। यह सुनकर महाराज श्रेणिकने भगवान गणधरसे कहा—नाथ, इस कथाके प्रसंगके साथ ही साथ श्रीनेमिनाथके 'चरित्रको भी सुनानेकी मुझपर कृपा करें।" श्रेणिकके पूछनेपर भगवान गणाधरने कहा—अच्छा सुनो, यदि यह सुननेकी तुम्हारी अत्यन्त उत्सुकता है तो मैं सुनाये देताहूं। समुद्र विजय नामक यादवोंके एक राजा थे। उनकी पटरानीका नाम शिवादेवी था। एक दिन शिवादेवी रात्रिको अपने शयनागारमें सुख पूर्वक शयन कर रही थी। शयनागार सुन्दर २ चित्रोंसे चित्रित था। शीशेके बड़े बड़े झाड़ छत से लटक रहे थे। दरवाजेपर मंगलसूचक जलपरिपूर्ण स्वर्ण कलश रखेहुए थे। खिड़कियोंसे सुधांसुकी किरने सुधा फुहारे छोड़रही थीं। गृहमें चारों ओर शान्तिका पूर्ण साम्राज्य छाया हुआ था। उसी समय स्वप्नमें शिवा देवीने जिनेन्द्रके अवतार सूचक गजराज 'वृषभ, केसरी, दो स्वर्ण कलशोंसे स्नान कराती हुई लक्ष्मी, दो पुष्पमालायें, परिपूर्ण चन्द्रमण्डल, सूर्योदय, मीनयुगल, दो कलश, कमलोंसे सुशोभित जलाशय, गम्भीर समुद्र, सुन्दर सिंहासन, छोटी-छोटी घंटिकाओंसे सुशोभित विमान, धरणेन्द्रभवन, प्रदीप्त रत्न समूह तथा निर्धूमाग्नि आदि वस्तुओंको देखा।

इसके बाद उसने अपने मुखमें प्रवेश करते हुए गजराजको देखा। स्वप्न देखते ही उनकी निद्रा भंग हो गयी। प्रातःकाल हो चुका था। सूर्यकी किरणें अपने अंधकार रूपी शत्रुको रणमें तितर-बितर करके विजयी सेनाके
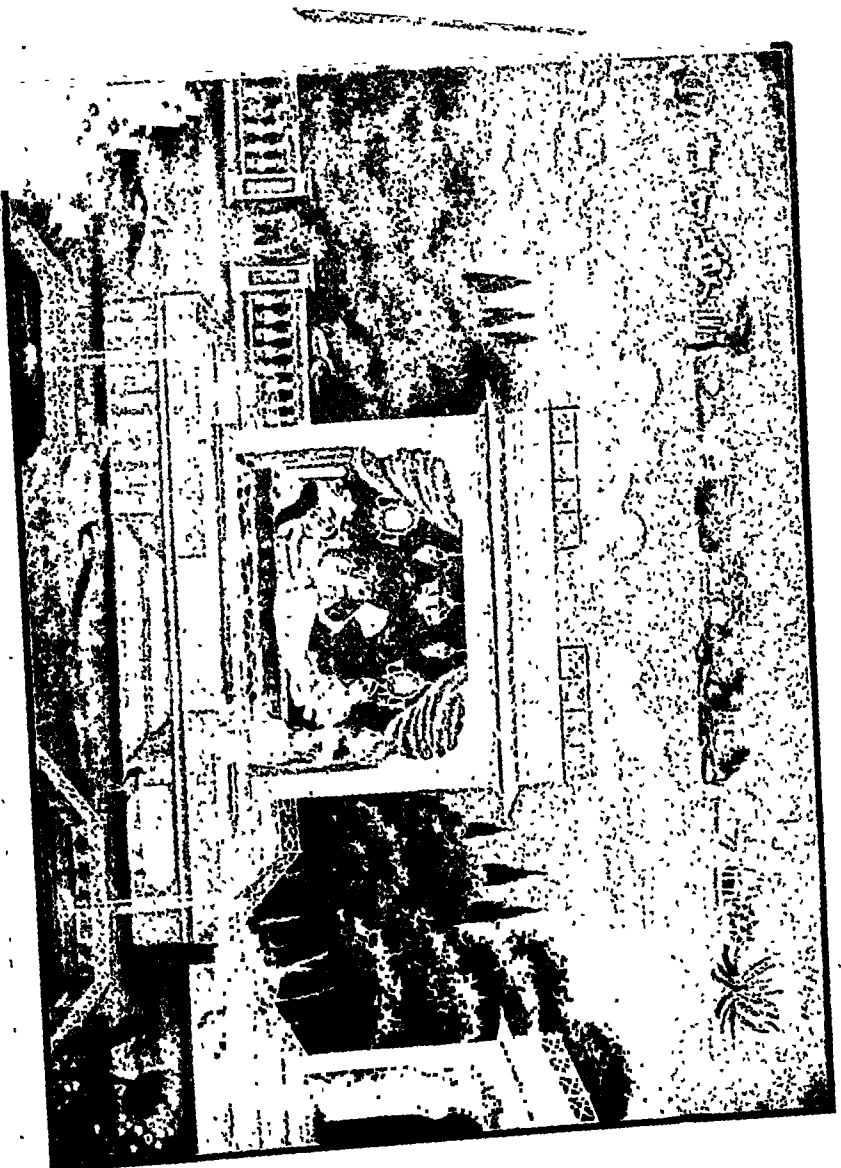
भगवान नेमनाथ की माता शिवादेवी के १६ स्वप्न पृष्ठ २८
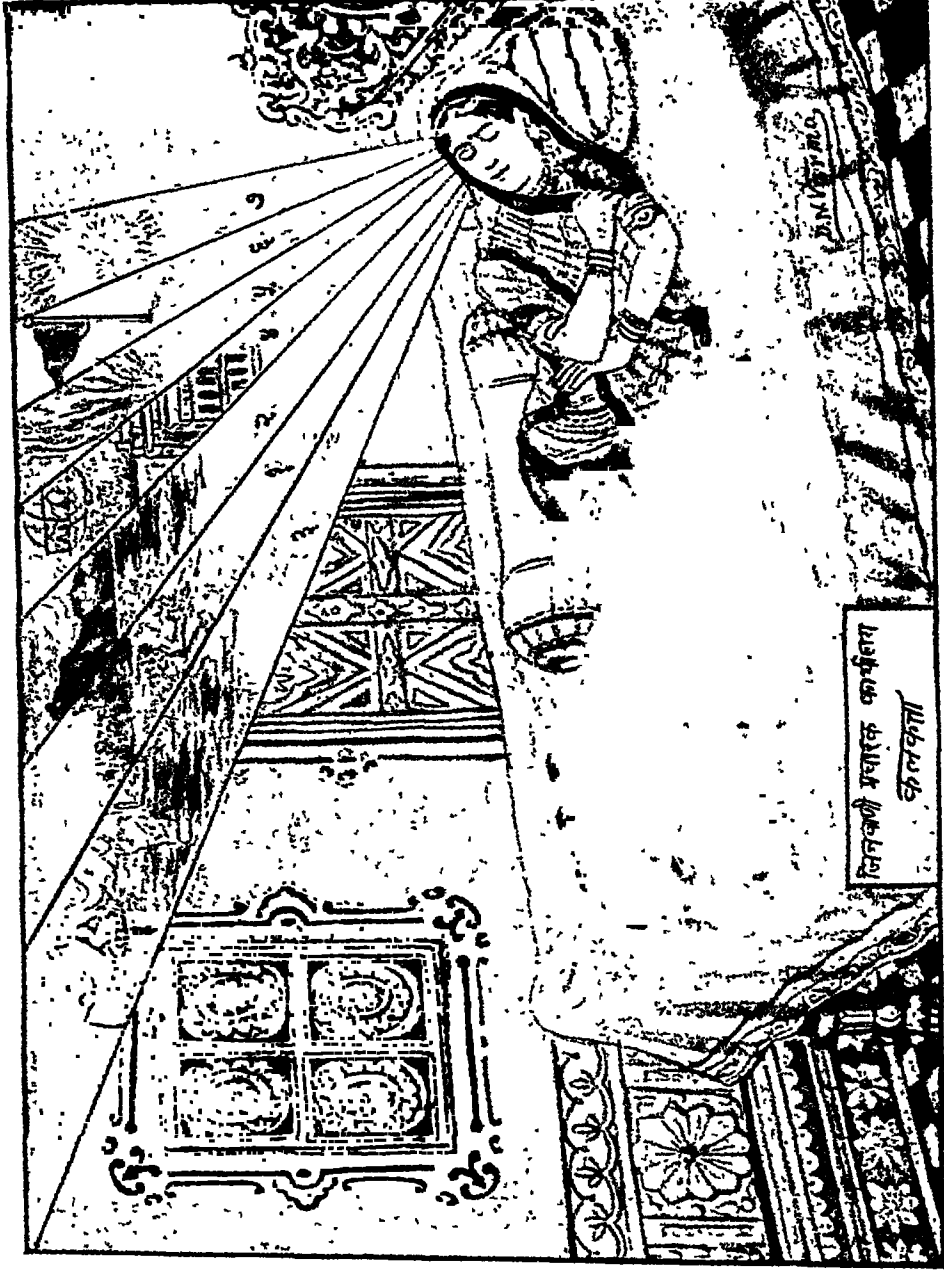
श्री कृष्ण की माता देवकी के स्वप्न

जवाहिर प्रेस, कलकत्ता।

समान अवरूद्ध गतिसे मुख लाल किये द्रुतगतिसे आगे बढ़ रही थी। शिवा-देवी तुरत विस्तरेसे उठकर बैठ गयी। पर्यंकमें लगेहुए शीशेमें अपने मुख कमलका दर्शन किया। आज तो उसकी शोभा कुछ और ही विचित्र हो चली थी। वह शीघ्र ही नित्य क्रियासे निवृत हुयी। माङ्गलिक द्रव्यों से सुसज्जित होकर पतिके पास गई और चरणों में शिर नवाकर राजसभामें रत्नजड़ित सिंहासनपर बैठ महाराजाके वामभागको सुशोभित करने लगी। राजाने आनेका कारण पूछा। महारानीने अपने सब स्वप्न कह सुनाये। राजाने कहा-प्रिये आज ही संसारका दुखनाश करनेवाले देवाधिदेवसे वन्दनीय तीर्थंकरका प्रवेश तुम्हारे गर्भमें हुआ है उनके अवतार लेनेके छःमहीना पहले ही से प्रतिदिन देवता अपने घरपर रत्नकी वर्षा करेंगे। इस प्रकार रानी अपने गर्भसे भगवानकी उत्पतिका समाचार सुन अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक अपनी सहेलियोंके साथ राजप्रसादमें लौट आयी।

धीरे धीरे गर्भके दिन पूरे होने लगे। श्रावणका महीना था। शुक्ल-पक्षकी षष्ठी तिथिको चित्रानक्षत्रका योग हुआ। दिशाएं स्वच्छ थीं उसी दिन शिवादेवीने तुलासे चित्रित चित्रके समान त्रिभुवन कमनीय कान्तिसे युक्त कोमल पुत्र प्रसव किया। पुत्रोत्पन्न होते ही नगरमें आनन्दोत्सवके नगारे वजने लगे। एवं पताकासे सुशोभित सम्पूर्णनगर इन्द्रपुरीको लज्जित करने लगा। सची एवं पुरन्दर ऐरावतपर चढ़कर देवताओंके साथ भगवानके दर्शन के लिए आये। दुन्दुभी घंटा एवं नगारोंके शब्दसे दिशायें गूञ्जित हो गयीं। इस प्रकार महेन्द्र सोरीपुरीमें आये और उतने भक्तिभावसे पञ्चाश्चर्यकी वर्षा की। अत्यन्त समारोहके साथ नगरीको इन्द्रपुरी सम सुसज्जित किया। तत्पश्चात् अपने स्वामीकी आज्ञाको शिरोधार्यकर इन्द्राणी स्वयं प्रसूतिकागारमें गयी कोर अपनी अलौकिक शक्तिसे वैसाही एक सुन्दर बालक रखकर भगवान नेमिनाथको उठालाई। इन्द्रभगवानको ऐरावतपर बैठाकर बढ़े समा-रोहके साथ सुमेरु पर्वतपर ले गये। वहांसे सुमेरुपर्वतपर ले जाकर भगवानको पाण्डुकशिलापर बैठाया। अभिषेक प्रारम्भ हुआ। वहांसे क्षीर समुद्र पर्य्यंत रत्न जड़ित स्वर्णकलशको लियेहुये देवताओंकी कतार बंधगयी। इन्द्र

और इन्द्राणी अभिषेक करने लगे। क्षीराभिषेक प्रवाहसे रजत पहाड़के समान सुमेरुकी शोभा हो गई। तत्पश्चात् अगर, कर्पूर एवं चन्दनादि सुगन्धित द्रव्योंसे सुवासित शुद्ध जलसे स्नान कराकर शचीने जिनेन्द्रका शरीर पोंछा। तदन्तर सुगन्धित द्रव्योंसे विलेपित शरीरको षोड़शालङ्कारोंसे भूषित किया गया। इस प्रकार इन्द्र भगवानका चरणामृत लेते हुए उठे और प्रार्थना करने लगे—"हे नाथ! हे जिनेन्द्र! पितामह! हे देवाधिदेव! हे जगन्नाथ हे! परमेश्वर! आप संसारमें धर्मवर्ती हैं, सर्वोत्कृष्ट हैं, अचल हैं, अगम हैं, अचिन्त्य हैं। आपही अनिद्य हैं। जगतके जनक हैं, पालक हैं, रक्षक है अजर हैं, अमर हैं, सस्वर है स्वयम्भू है, आप ही ज्ञान विज्ञान की मूर्ती हैं। आप तेजवान धैर्यवान मूर्ती शक्तिवान् ज्ञानवान सौभाग्यवान् मूर्तीमान् हैं। आप लोभ, क्रोध मोह, क्षोभ तथा मात्सर्यसे परे हैं। आप दुःख दरिद्रतारूपी समुद्रको पार करनेवाले चतुर नाविक हैं। अतः मैं आपको भक्तिभाव पूर्वक नमस्कार करता हूं। आपका मन रूप सर्पको नष्ट करनेवाले गरुड़ हैं, इच्छा रहित हैं, कर्मरूप मृगझुण्ड केलिये मृगेन्द्र हैं एवं मनोवाञ्छित फलदेनेवाले कल्पतरु हैं। अस्तु मैं बार२ नमस्कार करता हूं। इस प्रकार बहुत देर तक सप्रेम स्तुति करके इन्द्रने भगवानका नाम अरिष्टनेमि रखा। फिर इन्द्र भगवानको ऐरावतपर बैठाकर वापिस लेआये। इन्द्र की आज्ञा हुयी। सचीने ले जाकर बालकको उसी प्रकार माताके पास सुला दिया। इधर जब शिवादेवीकी निद्रा टूटी तो पुत्रको अलङ्कारोंसे सुसज्जित देखकर चकित हो गयी। इसकेवाद इन्द्र भगवानके माता-पिताकी पूजाकर अपने स्थानपर चले गये। इन्द्रके जानेपर यादवोंने भी भगवानका जन्मोत्सव किया। भगवान नित्यप्रति देव बालकोंके साथ बाललीला करते हुए बढ़ने लगे। उनकेलिये धनपति प्रति दिन वस्त्र भूषण भेजा करते थे।"

इस प्रकार भगवानकी उत्पत्तिका हाल सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले भगवन्, जिनेन्द्र भगवान् की उत्पत्ति सुनकर आपने मुझे आज कृतकृत्य करा दिया। अस्तु अब यादवोंकी हालत वर्णन कीजिए।

भगवान् गणाधर बोले उधर जब जरासंधने भी अपने भाईकी मृत्युका

समाचार सुना तो वह उसी समय एक बड़ी भारी सेना लेकर यादवोंपर धावा बोल दिया। यादवोंने जरासंधसे लड़कर अपना कल्याण नहीं देखा इसलिये वे अपनी अपनी सवारीपर चढ़कर नगर छोड़ भाग चले। जरासंधने उनका पीछा किया। यादवों ने जब जरासंध के पीछा करनेकी खबर सुनी तो वे जल्दी जल्दी पर्वत पारकर आगेको चल दिये।

जरासंध पर्वतपर पहुंचा। उसे आशा थी कि यादव पर्वतपर मिल जायेंगे। पर पहुंचते ही जरासंधके तो होश हवाश गायब हो गये। उसकी शक्तिका ह्रास हो चला। कारण कि मनुष्य जब कोई प्रतिज्ञाकर आगे बढता है और उसकी मनोकामना पूरी नहीं होती तो वह अत्यन्त निराश हो जाता है। उसका शरीर शिथिल पड़ जाता है। जरासंधने देखा कि पर्वतपर कहीं हाथीघोड़े रथ; अश्व, शस्त्र इधर उधर बिखरे पड़े हैं, हजारों स्त्री पुरुष की चिता जल रही हैं तो इसका कारण जाननेके लिए उसे कोतूहल उत्पन्न हुआ। उसने देखा कि एक वृद्ध औरत वहीं बैठकर रो रही है जरासंधने वृद्धासे पूछा—"तू कौन है? क्यों रोरही है? और यह कैसा भयङ्कर काण्ड है" वृद्धा बोली—'सुनिये मैं सब हालत आपसे सुनाये देती हूँ—"राजगृहमें जरासंध नामक एक अत्यन्त प्रसिद्ध राजा है। उसीके भयके मारे यादवलोग जरकर भस्म हो गये हैं। मैं उनके घरकी दासी हूँ। चूकि जीवन सबको प्यारा होता है अतः मैं उनके साथ नहीं जली। उन्हींके दुःखसे दुखित होकर तथा अपने भविष्यकी बातोंको शोचकर बैठी २ रो रही हूं।"

वृद्धाकी बात सुनकर जरासंधको अत्यन्त खुशी हुयी। वह लौटकर अपनी राजधानीमें आया और निष्कंटक राज्य करने लगा। पर उसको यह पता नहीं चला कि यह देवों की माया थी। जब यादवों को जरासंधके लौटजानेका समाचार मिला तो वे धीरे धीरे चलकर समुद्रके पास आगये। अब यहां समुद्रकी शोभाका वर्णन ही क्या किया जाय जो कि स्वयंसब रत्नोंका खान रत्नाकर है। संक्षिप्ततः यही कहा जायगा कि किनारे परके फलपुष्पों से लदे हुए वृक्ष मर्य्यादापुरुषोत्तम श्रीकृष्णचंद्रके हेतु ही जान्म धारण किये थे।

एक दिन श्रीकृष्णने कुशासनपर बैठकर दो उपवास किये। उपवासके

प्रभावसे सागरासुर स्वयं वहां उपस्थित हुआ। श्रीकृष्णने अपनेको उसका अतिथि बताते हुए रहनेका स्थान मांगा। सागरासुरने कहा "महाराज, जब तक आप संसारमें जीवित रहेंगे तब तक मैं आपको रहनेका स्थान समर्पित करता हूँ। इस प्रकार समुद्रको बारह योजन हटाकर श्रीकृष्णने उस स्थानको अपने अधिकारमें कर लिया। तत्पश्चात् इन्द्रकी आज्ञासे कुबेरने एक सुन्दर नगरका निर्माणकर उसका नाम द्वारका रक्खा। नगरमें अत्यन्त उत्तुङ्ग गगनचुम्बिय स्वर्ण महल बने थे। वे इस प्रकार सुन्दर बने थे मानो इन्द्रपुरी भी उसकी शोभासे लज्जित होती थी। इस प्रकार श्रीकृष्ण सुख शांतिसे, वहां रहने लगे।

यों तो श्रीकृष्णकी जाम्बवती, सुसीमा, पद्मावती, गौरी, गान्धारी, लक्ष्मीमती आदि सोलह हजार रानियां थीं पर उनकी पटरानी थी सत्यभामा। उनका दूसरा विवाह भीष्मराजकी पुत्री रुक्मणीसे हुआ था। धीरे २ द्वारका इतना समृद्धशाली हो गया कि देश देशान्तरसे व्यापारी व्यापार करनेको आने लगे। एक बार राजगृहके कुछ व्यापारियोंने द्वारकाका सब वर्णन महाराजको कह सुनाया। महाराजको जब यह खबर मिली कि कृष्ण तथा यादव जीवित है तो उसको बड़ा क्रोध हुआ। उसने श्रीकृष्णके पास एक दूत भेजकर कहलाया कि तुम मेरा आधिपत्य स्वीकार करो। श्रीकृष्णने दूतकोसभासे निकलवा दिया। अबतो जरासंधके क्रोधकी ज्वाला इस प्रकार लपटी जिस प्रकार शुष्क काष्ठपा अग्नि। वह बड़ी भारी चतुरंगिणी सेना लेकर कुरुक्षेत्रमें आ डटा। यह समाचार जब श्रीकृष्णको मिला तो वे भी अपने दल बलके साथ जरासंधका मुकाबला—नहीं, नहीं, यों कहिये वि जरासंधको मार भू भारको हल्का करनेके लिये आ पहुंचे। दोनों दलोंमें घमासान युद्ध प्रारम्भ हुआ। जरासंधकी सेनाके सामने यादवोंकी सेनाकी सब शक्ति जाती रही। यादव सेना इधर उधर भागने लगी। जब बलभद्रने अपनी सेनाकी यह दुर्दशा देखी तो वे स्वयं उठे और अपनी शक्तिका परिचय देने लगे अब तो जरासंधकी सेनामें खलबली मच गयी। यह देख रूप्यकुमार भगवान श्रीनेमीनाथसे युद्ध करनेके लिए इस प्रकार सन्नद्ध हुआ जैसे मृगका बचा मृगराजसे मुकाबला करनेकी इच्छा करता है। जरासंध और श्रीकृष्णकी मुठभेड़ हो गई। उसने श्रीकृष्णके ऊपर चक्र चलाया।

चक्र श्रीकृष्णकी प्रदक्षिणा देकर उल्टा उनके हाथमें आ गया। श्रीकृष्णने उसी चक्रसे जरासंधका काम तमाम कर दिया और तबसे इस चक्रके साथ साथ सात रत्न भी श्रीकृष्णको प्राप्त हुए। इसके बाद श्रीकृष्णने जरासंधका राज्य उसके पुत्रको समर्पित कर अपनी राजधानी द्वारकापुरीमें आ गये।

एक दिन बलदेव वसुदेव कृष्ण आदि सब यादवोंकी सभा हुई। प्रसंगवस किसीने सबसे अधिक बलवान भगवान नेमनाथको बताया। बलदेवने भी इसका समर्थन किया। पर यह बात कृष्णको अच्छी न लगी। उनको अपने बलका अधिक घमंड था। वे झट लंगोटी बांध सभामें उठ खड़े हुये और भगवान नेमीनाथसे लड़नेके लिये उन्हें ललकारा। भगवानने कहा— लड़ना तो दूर रहा पहले मैं अपना पैर जमीनपर आरोपित करता हूं, उसे ही तुम हटा दो तो मैं अपनी हार मान लूंगा। श्रीकृष्णने अपना सब बल लगाया पर पैर टससे मस नहीं हुआ। फिर भगवानने कहा—"खैर इसे जाने दो मैं अपनी भुजा ऊपर उठाता हूं तुम यदि उसे ही मोड़ दो तो मैं अपनी हार मान लूं। श्रीकृष्णकी शक्तिका फिर पता लग गया और वे बांहको नहीं मोड़ सके। इस पर भगवानने कहा—"अच्छा इसे भी जाने दो तुम मेरे बायें हाथकी अंगुली भी अपनी शक्तिसे नवा दो तो मैं अपनी हार स्वीकार कर लूं। इस बार श्रीकृष्णने फिर साहस किया। पर भगवानने अपनी अंगुलीसे उन्हें ऊपर उठा लिया और उन्हें झुलाने लगे। भगवानका बल देख सभाके सदस्य दंग रह गये। भगवानकी शक्ति देख देवताओंने आकाशसे पुष्प वृष्टि की।

अब तो श्री कृष्ण रात दिन चिन्तामें डूबने उतराने लगे कि कहीं नेमिनाथ हमारा राज्य न छीन लें। एक दिन एक ज्योतिषीको बुलाकर श्रीकृष्णने भगवान नेमिनाथको विरक्त करनेका उपाय पूछा। ज्योतिषीने उत्तर दिया कि भगवानके विरक्त करनेका और उपाय तो नहीं दीख पड़ता है पर हां एक उपाय है, उसीसे वे बिरक्त हो घर द्वार छोड़कर बाहर निकल जांयगे। वह यह है कि जब वे किसी हिंसाका कारण देखेंगे फौरन दीक्षा ले लेंगे। तबसे तो श्रीकृष्ण इसी उपायकी चिन्तामें डूबने उतराने लगे।

शीत ऋतुके व्यतीत होने पर ऋतुराजका आगमन हुआ। पृथ्वीके सब

बन उपबन बाग बाटिका नदी सरोवर अपने राजाकी अगवानीमें फल पुष्पोंके उपहारसे सुसज्जित होने लगे। कोकिल रूपी चारणगण पंचम स्वरसे ऋतुराज का गुणानुवाद गाने लगे। चम्पक बकुल पनस कदम्ब तमालके सुगन्धित पुष्पों से दिशायें सौरभशाली हो चलीं। स्त्री पुरुषोंके हृदयको कामाग्निसे दग्ध करनेके लिये कामदेव की फहराती हुई विजय पताका शनैःशनै आगे बढ़ने लगी। इधर श्रीकृष्णके हृदयमें भी जल क्रीड़ा करनेकी भी अभिलाषा रूपी तरंग हिड़ोले मारने लगी। अस्तु एक दिन वे भगवान नेमनाथके साथ जलक्रीड़ा करनेके लिये सरोवरमें गये। श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ बहुत देरतक क्रीड़ा करके जलसे बाहर चले गये। जाते समय उन्होंने गोपियोंको इशारा किया कि नेमिनाथका चित्त कामवासनाकी ओर खींचकर लगा देना। अब तो गोपियां भगवान नेमिनाथ के साथ ही नाना तरहकी क्रीड़ा करने लगीं। कुछ देर बाद नेमिनाथ जलसे बाहर निकले जाम्बवतीसे बोले—"हमारे गीले वस्त्रको शीघ्र निचोड़ दो, हमें घर जाना है।" यह सुन जाम्बवतीने रूखे शब्दोंमें कहा—"मैं किसीकी दासी नहीं हूं। मैं केवल उसीकी आज्ञा पर मर मिटने वाली हूँ जिसमें शेषशय्यापर सोनेकी शक्ति हो, जो सुदर्शन चक्र चढ़ा सकता हो, जो शरंगधरकी प्रत्यंचापर बांण चढ़ा सके तथा जिसमें पांचजन्य शंख बजानेकी शक्ति हो।" जाम्बवतीके इस उद्धता पूर्ण उत्तरसे नेमिनाथका हृदय अत्यन्त दुःखित हुआ। वे वहांसे चलकर श्रीकृष्णकी युद्धशालामें पहुंचे और ताल ठोककर उन्होंने अपने पैरके अंगूठेसे सुदर्शन चक्रको घुमा दिया। इस प्रकार उन्होंने अन्य दोनों कार्योंको पूराकर पांचजन्य शंखको अपने नाशिकाके छिद्रसे इस प्रकार फूंका कि मालूम हुआ कि प्रलयकालका बादल गर्ज रहा हो। श्रीकृष्णको जब इसका कारण मालूम हुआ तो वे दौड़े हुये आकर भगवान नेमनाथके क्रोधको शान्त करनेके लिए प्रार्थना करने लगे। इसके बाद वे लोग सुख पूर्वक हिल मिल कर रहने लगे। धीरे धीरे नेमिनाथ पूर्ण वयस्क हो गये। एक दिन श्रीकृष्णने भगवानकी माता शिवादेवीके पास पहुंचकर श्रीनेमिनाथके विवाहका प्रसंग उठाया। शिवादेवीने इसका भार श्रीकृष्णके ऊपर रख छोड़ा। अब शिवादेवीकी सम्मति पाकर श्रीकृष्ण बलभद्रको साथ लेकर उग्रसेनके पास आये। उग्रसे-

नने उनका बहुत आदर सत्कार किया। थोड़ी देर बाद श्रीकृष्णने नेमिनाथके साथ राजकुमारीके ब्याहकी बात चलाई। उग्रसेनको भी यह राय ठीक जची। वैवाहिक दिवस निश्चित हुआ। बारात खूब सज धजके साथ उग्रसेनकी राजधानीको चली। भगवान नेमिनाथका रथ अत्यन्त सुन्दरताके साथ सजाया गया। भगवान की बरात जूनागढ़ पहुंची ही थी कि मार्गमें पशुओंके बिलबिलानेकी आवाज उनके कानमें पड़ी। भगवानने सारथीसे इसका कारण पूछा। सारथी बोला "धर्मावतार, ये पशु आपके विवाहके लिये एकत्रित किये गये हैं। इन पशुओंका मांस म्लेच्छ बरातियोंको खिलाया जायेगा" इस क्रूरताकी करुण कहानी सुन भगवान तो सन्न हो गये! उन्होंने इन पशुओंके वधका कारण अपना विवाह ही समझा। अतः उन्होंने रथ लौटाने केलिये तुरंत सारथीको आज्ञा दी।" यह समाचार बिजलीकी नांई चारों ओर फैल गया। राजकुमारी को जब यह खबर मिली तो वह महलके ऊपरसे देखने लगी। श्रीकृष्ण बलभद्र आदि सब यादवोंने समझाया पर भगवान अपने दृढ़ निश्चयसे नहीं डिगे। इस प्रकार वे पशुओंकी रक्षाकर वैराग्य धारणकर गिरनार पर्वतपर पहुंचे।

उस समय लोकान्तिक देवोंने भी आकर भगवानके वैराग्यकी प्रशंसा की और पालकीमें चढ़ाकर उन्हें गिरनार पर्वतके सहस्रावनमें ले गये। वहां भगवानने अपने सब वस्त्राभरणका त्यागकर अपने सिरके बालोंका लौंच कर दिया। उन केशोंको इन्द्र ले गये और क्षीर समुद्रमें डाल दिये। तत्पश्चात् भगवानने सिद्ध भगवानको नमस्कार कर जिनदीक्षा ग्रहणकी। दीक्षोत्सवमें इन्द्र वरुण कुवेरादि देवोंने भी भाग लिया। इस प्रकार छप्पन दिन तक ध्यानवह्निमें स्थिर रहनेके बाद घातिया कर्मोंका नाशकर आश्विन शुक्ल प्रतिपदाको केवल ज्ञान प्राप्त किया। केवल ज्ञान होते ही इन्द्रने आकर गिरनार पर्वतपर बारह कोठों से सुसज्जित समवसरण रचा। उसमें डेढ़ योजन (छः कोश) चौड़ा और तीन प्राकारों (कोठा) से सुसज्जित दैदीप्यमान भद्रपीठ, मानस्तम्भ, सुन्दर सुन्दर पद्मसरोवर, खाई, पुष्पवाटिका, नाट्यशाला, वेदिका, ध्वजा और स्तुपादि वस्तुयें बनवायी। सिंहासनपर बैठे हुए भगवानके ऊपर देवता चमर ढोरने लगे। भगवानके ग्यारह गणधर हुए। जब यह समाचार द्वारकामें पहुंचा

तो कृष्णादि सब गोप-गोपियां भगवानके दर्शन केलिए आईं। भगवानका उपदेश सुनकर राजमती आदि अनेक स्त्रियोंने भी आर्यकाकी दीक्षा ली।

भगवान अन्यान्य देश देशान्तरोंमें परिभ्रमण कर पुनः गिरनार पर्वतपर आये। भगवानके आनेका समाचार सुन वसुदेवकी स्त्री देवकी भी दर्शनके लिए वहां गई। उनकी पूजाकर देवकीने पूछा—भगवान, आप कृपाकर मुझे बतलाइये कि दिगम्बर मुनि एक दिनमें दो वार आहार कर सकते हैं या नहीं भगवानने उत्तर दिया नहीं कर सकते।

तब फिर देवकीने कहा—भगवन, आज मेरे घर दो मुनि तीनवार आहार कर गये और वे मुझे एकही समान दीख पड़े। अतः आप इसका कारण बताइये। भगवानने देवकीका भ्रम दूर करतेहुए कहा वे छहों तुम्हारे पुत्र थे। अब तो देवकी पुत्रके प्रेमसे विकल हो गयी। इस घटनाका हाल जब अन्य-लोगोंके कानमें पहुंचा तो उन्हें भी संसारकी लीलासे अत्यन्त वैराग्य उत्पन्न हुआ। उनमेंसे बहुतोंने तो अणुव्रत धारण किये, बहुतोंने सम्यकत्व ग्रहण किया तथा बहुतोंने केवल जिनेश्वरकी पूजा ही करनेकी प्रतिज्ञा ली। उस समय देवकी तथा कृष्णकी आठों स्त्रियोंने भी अपने२ पाप पुण्य एवं पूर्वजन्म का हाल पूछा। वलदेव भी भगवानसे तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र तथा वसुदेवादिके उत्पन्न होनेका कारण पूछकर अत्यन्त हर्षित हुए।

वलदेवको कुछ भविष्यकी बातें जाननेकी इच्छा हुयी। अस्तु उन्होंने भगवानसे पूछा,—"नाथ, देहधारियोंका मृत्यु होना निश्चित है। अतः आप कृपाकर श्रीकृष्णकी मृत्युका हाल मुझे बताइये। वलदेवके अत्यन्त आग्रह करनेपर भगवानने कहा कि द्वारकाका नाश तो मदिरा और द्वीपायन मुनिके कारण होगा तथा श्रीकृष्णकी मृत्यु जरत्कुमारके द्वारा होगी।

यह समाचार जब श्रीकृष्णको मालूम हुआ तो उन्होंने सम्पूर्ण राज्यमें घोषणा करा दी कि आजसे जो कोई मदिरा पान करेगा वह राजदण्डका भागी होगा। जरतकुमार भी अपने हाथसे कृष्णकी मृत्युका समाचार सुनकर अपना घरद्वार छोड़ शिकारीका वेष बनाकर जङ्गलमें रहने लगे। इस प्रकार भगवान की बात असत्य करने केलिये उन लोगोंने प्राणपणसे प्रतिज्ञा करली।

पर क्या भगवानकी बात भी झूठी हो सकती है ? सूर्यका पूर्वसे पश्चिम का उगना सम्भव हो जाय तो हो जाय, पर जिनेन्द्रको बात कभी झूठी नहीं हो सकती। क्योंकि—नान्यथा वादिनो जिनाः अस्तु, पाठकगण देखेंगे कि किस प्रकार आगे चलकर ये बातें सत्य सिद्ध होती हैं।

बहुत दिन बाद यादवोंके मनमें वनक्रीड़ा करनेकी लालसा उत्पन्न हुयी। अतः वे लोग खूब सज-धजके साथ वनमें जाकर क्रीड़ा करने लगे। क्रीड़ा करते २ वे बहुत थक गये। भूख प्याससे कण्ठ अवरुद्ध होने लगा। चारों तरफ पानी खोजा गया पर जलाशयका नामो निशाना तक न मिला। अन्तमें एक बहुत पुराना मदिरासे भरा हुआ गड्ढा मिला उन लोगोंको मालूम हुआ कि यह स्वच्छ जल ही है। अब तो वे मदिरा पी पी कर मतवाले हो चले। अब वहांसे घरकी ओर रवाना हुए। जब द्वारकाके पास आये तो देखा कि द्वीपायनमुनि ध्यानावस्थित हो बैठे हैं। यद्यपि मुनिके द्वारा द्वारका ध्वंसकी बारह वर्षीय अवधी पुरी हो चली थी तथापि भविष्यमें द्वीपायनके द्वारा द्वारका दहनकी बात याद आनेसे उन लोगोंको अत्यन्त क्रोध आ गया। वे रुष्ट हो मुनिको पत्थरोंसे मारने लगे। पत्थरोंकी मारसे मुनिका सिर फट-गया ? वे लोहूसे लदफद हो पृथ्वीपर गिर पड़े। इस पर भी यादवोंके क्रोध तथा मुनिकी शान्तिका कांटा बराबर रहा। पर जब यादवोंने भंगीको बुलाकर मुनिके ऊपर पेशाब करवाया तो यह अत्याचार उनसे नहीं सहा गया। वे क्रोधसे मुर्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़े। जब यह खबर श्रीकृष्ण और बलभद्र के कान तक पहुंची तो वे दौड़े हुए द्वीपायन मुनिके पास आये और यादवों का अपराध क्षमा करनेके लिए प्रार्थना करने लगे। पर मुनिके क्रोधने श्रीकृष्ण की प्रार्थनापर विजय पाई। उन्होंने कृष्णको द्वारका चले जानेका इशारा किया। लाचार हो कृष्ण द्वारका लौट आये। उन्होंने सम्पूर्ण नगरमें घोषणा करायी कि जिन्हें अपना प्राण प्यारा हो वे निकल कर दूसरे देशमें चले जाँय घोषणा सुनते ही शम्बुकुमार आदि बहुतसे यादवोंने गिरनार पर्वतपर जाकर जिनदीक्षा ग्रहण करली।

उधर द्वीपायनमुनि मरकर पुनः अग्निकुमार हुए। उन्हें अवधिज्ञानसे

यादव कृतपूर्व जन्मका अत्याचार स्मरण हुआ। उन्होंने शीघ्र द्वारकामें जाकर नगरके चारों ओर आग लगा दी सब जीवजन्तु प्राण बचानेके लिए व्याकुल हो गये। पर अग्निकुमारने तो प्रण करलिया था कि द्वारकाके एक कीड़े मकोड़े को भी जीवित नहीं छोड़ेंगे। सब इधर उधर नगरके बाहर भागनेका प्रयत्न करते थे पर भागें तो कहां! चारों तरफ तो मार्गपर अग्निकी ज्वाला धधक रही थी। कृष्ण भी अपने माता-पिताको रथपर चढ़ाये अग्निसे बचनेका व्यर्थ परिश्रम कर रहे थे। उनकी व्याकुलता देख अग्निकुमार बोले—"श्रीकृष्ण! तुम्हारे सब परिश्रम बेकार हैं। इस द्वारकामें तुम और बलदेवको छोड़कर अन्य कोई बच नहीं सकता। इस प्रकार अनेकों उपाय करनेपर भी नगर भस्मीभूत हो गया। सब बन्धु बान्धवोंके नाश होनेसे बलदेव और कृष्ण अधिक व्याकुल हो रोने लगे मानो आकाशके तारे टूटकर गिर रहे हों।

देखते २ द्वारका भस्म हो गई, तब कृष्ण और बलदेव वहांसे चलकर कौसम्बीके वनमें पहुंचे कुछ देर बाद कृष्णको प्यास लगी। उन्होंने बलदेवको जललानेके लिए भेजा जंगलमें वे दूरतक निकल गये। इधर श्रीकृष्णको निद्रा आ गई। वे वृक्षकी छायामें सो गये।

अकस्मात् जरत्कुमार आखेट की खोज में उधर ही आ निकला उसने श्री कृष्ण को सोया देख समझा कि यह कोई मृग है। उनके पैर में कमल का चिन्ह मृगनेत्र के समान चमक रहा था। जरत्कुमार ने कान तक धनुष की डोरी खींच श्री कृष्ण पर बाण फेंका। बाण लगते ही श्रीकृष्ण चिल्ला उठे। उनका बिलाप सुनकर जरत्कुमार रोते हुए आकर पैर पर गिर पड़े श्रीकृष्ण ने जरत्कुमारका अपराध छमा कर दिया और कहा कि तुम यहांसे शीघ्र दक्षिण दिशामें चले जाओ नहीं तो बलदेव अब जल लेकर आते ही होंगे। मुझे मरा देख वे निश्चयही तुझे मार डालेंगे। बहुत समझाने पर जरत्कुमार वहां से चला गया। उधर जब बलदेव जल लेकर लौटे भाई की हालत देख धड़ामसे ज़मीन पर गिर पड़े। वे गला फाड़ २ कर रोने चिल्लाने लगे और कहने लगे कि—प्यारे, उठो २ जल पीलो। सोये २ बहुत देर हो गयी। यदि तुम जल न पीवोगे तो मैं कैसे पी सकूंगा? कृष्ण! तुम आज क्यों इतने निष्ठुर बन

गये हो? तुमने तो आज तक मेरी कभी अवहेलना न की थी। आज इतने देर तक मौन होने का क्या कारण है। हा विधाता मैं कहां जाऊं, क्या करूं किससे कहूँ? अपने भाई को कैसे मनाऊं! प्रिय, उठो। देखो रोते २ मेरा गला सूखा जा रहा है भाई तेरे ही लिये मैं माता पिता को भी जलाकर अबतक जीता रहा प्रिय उठो, " बचावो मैं मरा जाता हूं, बचावो २ करते २ बलराम मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। थोड़ी देर बाद जब मूर्छा टूटी, ज्ञान हुआ तो बलराम कृष्ण को कंधे पर उठा पागल की नाईं जंगल में इधर उधर भटकने लगे। वे कभी उन्हें गोदी में सुलाते, कभी चूमते, चुमकारते, शरीर पर पंखा डुलाते। कभी बोलते, कभी हंसो करते कभी जगाते कभी शरीर पर छाया करते इस प्रकार वे भाई के शोक से एकदम पागल हो गये।

जरत्कुमारने पाण्डवोंके पास जाकर यादवोंकी सब कथा कह सुनाई। पाण्डव सुनकर बहुत दुखित हुए। तब से जरत्कुमार वहीं पाण्डवों के साथ रहने लगे। कुछ दिन बाद पाण्डवों ने जरत्कुमार का ब्याह भी कर दिया। वर्षाकाल बीतने पर पाण्डव जरत्कुमारके साथ पृथ्वी पर घूमते हुए वहीं जा पहुंचे जहां बलदेव श्रीकृष्णका मृतक शरीर लिये घूम रहे थे। बलदेवको देखते ही वे दौड़कर उनके पैरों पर गिर पड़े। पर बलदेव को चेतना कहां? उन लोगोंने शव जलाने के लिये बलदेव को बहुत समझाया पर बलदेव ने उनकी सब कही बातें अनसुनी कर दी। और उलटे वे शव उठा कर चल दिये। अहा! भाई भी क्याही अमूल्य रत्न है? संसार में पिता स्त्री पुत्र धन दौलत इज्जत सब मिलता है। पर बिछुड़ा हुआ भाई नहीं मिलता। यह देख एक देव, सारथी का वेश बनाकर उनको समझाने आया। उसने जमीन पर कमल का बीजा रोपन किया और उसे जलसे सींचनें लगा, बर्त्तन में जल रख उसे मथने लगा और गाय का सींग दुहने लगा। जब इतने पर भी बलदेवको ज्ञान नहीं हुआ तो उसने अपने रथको बड़े परिश्रमसे विषम पर्वतपर चढ़ाया और पीछे जमीनपर उतार कर उसे खंड २ कर दिया। बलदेवको उसकी मूर्खतापर बड़ी हंसी आयी। खिलखिला कर हंस पड़े और बोले—"तूं तो बड़ा मूर्ख मालूम पड़ता है! भला बता तो सही कि इतना परिश्रम कर तूंने तो रथको पर्वतपर चढ़ाया

और फिर वहांसे गिराकर टुकड़े २ कर दिया। तुझे क्या फ़ायदा हुआ !"

देवने कहा—पहले अपनी मूर्खतापर तो विचार कीजिये फिर मुझे मूर्ख कहना। जब श्रीकृष्ण युद्धमें नहीं मरे थे तब तो तुमने उन्हें मरा समझ लिया था और जब वे जरत्कुमारके बाणसे मर गये हैं तब तुम उसे जीवित समझते हो। इसलिये हमसे बढ़कर मूर्ख तो तुम्हीं हो। यह सुनते ही बलभद्रकी यह आंखे खुल गयीं उन्होंने तुरत शवको पर्वतपर लेजाकर इसका अग्नि-संस्कार किया। संसारको नश्वरतासे उन्हें अत्यन्त बैराग्य उत्पन्न हुआ। उन्होंने उसी समय भगवानके पास जाकर जिन दीक्षा ग्रहण कर ली।

पाठक एवं श्रोताओ याद रखो यादवोंकी दुर्गतिको। रोवो उनके भाग्य पर। जला दो ज्ञानका दीपक मद्यपायियोंके हृदयमें। खोल दो अज्ञानकी पटल उनकी आंखोंसे। फिर देखो संसारमें चारों ओर शान्तिका ही साम्राज्य है। मदिरापानसे मनुष्य उन्मत्त हो माताको स्त्री, स्त्रीको माता, मित्रको शत्रु तथा शत्रुको मित्र समझने लगते हैं। शास्त्र और पुराण पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि मदिरा पीनेवालेको नरक की यातना भोगनी पड़ती है। क्या फिर भी तुम्हारी आंखें नहीं खुलती। कबतक गाढ़ी निद्रामें मस्त रहोगे ? उठो, जागो, चढ़ जाव ऊंचे मीनारकी चोटीपर और डंकेकी चोट दे कर पुकार दो लोगोंमें कि सड़ीगली वस्तुओंसे बने हुए इस अपवित्र मदिरेके पानसे नरक छोड़ अन्यत्र ठिकाना नहीं। इसका बुरा प्रभाव तुम्हारे पाचन क्रियाको बिगाड़ कर मस्तिष्कको भी धूलमें मिला देता है। याद रखो द्वारकाके समान यह केवल तुम्हें ही नहीं वरन् तुम्हारे कुल परिवारका भी नाश कर देगा। अस्तु, कुलीन पुरुषोंको इसका कभी स्पर्श तक भी न करना चाहिये।

कृमिरास कुवास सरापद है, सुचिता सब छूवत जात सही।
जिस पान किये सुधिजाय हिये, जननी जन जानत नारि यही॥
मदिरासम और निषिद्ध कहा, यह जानि भले कुलमें न गही।
धिक है उनको यह जीभ जले, जिन मूढ़नके मत लीन कही॥

चतुर्थ वेश्याव्यसन कथा।

अपने अपने प्राणकी सभी मनावे खैर,
हाय शिकारी बन विषै, पशु मारे बिन वैर।
पशु मारे बिन बैर खैरकी दया हिये नहिं लावै,
शीत घाम सब सहे बनीमें भोजन भी नहिं पावे।
कायर क्रूर कुरंग अंगमें भारी चोट लगावे,
नाम भजन हरनाम लगाके, मार मार मुख गावे।

श्रेणिकने गौतम गणधरको प्रणाम कर पूछा—भगवन्! संसारमें वेश्यागमनके दुर्व्यसनमें फंसकर किस किसको किस किस तरहका दुःख भोगना पड़ा है, इसे आप कृपाकर मुझे बतायें। तब गौतम गणधर बोले—राजन्! सुनो। मैं तुम्हें चारुदत्तका चरित्र सुनाता हूँ। क्योंकि वेश्याके द्वारा उसे बहुत दुःख उठाना पड़ा है।

अङ्गदेशके अन्तर्गत चम्पा नामक एक परम रमणीय नगरी है। उसके राजाका नाम था विमल वाहन। उनके राज्यमें एक सेठ रहता था जिसका नाम था भानुदत्त। देविला नामकी उनकी एक स्त्री थी उसके पुत्र न था, इसलिये वह सदा पुत्रप्राप्तिके लिए वह देवाराधनमें ही अपना समय व्यतीत करती थी। एक दिन किसी मुनीने उसे पूजा करते देख उसको समझाया कि पुत्री यदि तुम पुत्र रत्नकी प्राप्ति करना चाहती हो तो इस मिथ्यात्वको त्याग कर सम्यकत्व प्राप्त करो। कारण कि कुलदेवकी पूजामें सम्यकत्वका लेश मात्र भी नाम नहीं। इस प्रकार मुनिके समझानेसे उसका मन उस निस्सार कार्यसे हट गया। कुछ दिन बीतने पर देविलाकी मनोकामना पूर्ण हुयी। उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम चारुदत्त रखा गया। वह बाल्यकाल ही में सब शास्त्रोंका ज्ञाता हो गया। उसकी विद्या-बुद्धिकी प्रखरता देख यही मालूम होता था मानो—स्थिरोपदेशांमुपदेश काले प्रयेदिरे प्राक्तन जन्म विद्या उनका उपदेश काल जान कर सब विद्यायें स्वयं उसके हृदयमें आ उपस्थित हुयी हो? विद्याध्यन काल ही में उसको हरिसख, गौमुख, वराह, परंतप तथा मरुभूतिसे मित्रता हो गयी।

चम्पाके बाहर मन्दिर नामका एक पर्वत था, श्री यमधर मुनिको उसपर मोक्ष प्राप्त हुआ था अतः यह अत्यन्त पवित्र सिद्धक्षेत्र गिना जाता था। प्रतिवर्ष अगहनके महिनेमें देश देशान्तरसे यात्री दर्शन करने आते थे। एक समय चम्पाके राजा विमल वाहन भी यात्रा करने गये। उनके साथ बहुत से मनुष्य थे। उनमें चारुदत्त भी अपने मित्रोंके साथ सिद्धक्षेत्रमें अपनी मनोकामना सिद्ध करने गया। महाराजने देखा कि ऐसे छोटे बालकके लिए इतने ऊंचे पर्व्वत पर चढ़ना उसकी सामर्थ्यसे बाहर है। अस्तु, चारुदत्तको समझा बुझा कर पर्वतके नीचे ही छोड़ राजा आगे चले। चारुदत्त भी अपने मित्रोंको साथ लेकर नदीके किनारे उपवनमें खेलने लगा। वह खेल ही रहा था कि उसके कानोंमें किसीके करुणा क्रन्दन की आवाज़ सुन पड़ी। वह आगे बढ़ा और देखता है कि कदम्ब वृक्षकी डालीमें एक पुरुष कीलित होकर बंधा हुआ है। उस पुरुषकी दृष्टि एक डाल पर लगी हुयी थी। चारुदत्तने डालके पास जाकर उसे उठाया। डालके नीचेसे उसे तीन गुटिका मिली। उन तीनों गुटिकाओंका अलग अलग गुण था। एकमें तो कीलोत्पाटनकी शक्ति थी तथा अन्यमें संजीवनी एवं व्रण संरोहिणी गुटिकाके प्रभावसे वह पुरुष बन्धनसे विमुक्त हो गया और उसके घाव भी अच्छे हो गये। कीलित पुरुष अपने हाथमें ढाल तलवार ले उसी समय वहांसे चलता बना। देखते ही देखते उसने एक पुरुषको बांधकर चारुदत्तके पास लाया। उसके साथ एक स्त्री भी थी। उसने चारुदत्तके पैरों पर गिर कर कहा—स्वामी! आप कृपाकर मेरी कुछ प्रार्थना सुन लिजिए। चारुदत्तने कहा—अच्छा कहो, वह कहने लगा—विजयार्द्धपर्वत परकी उत्तरी श्रेणीमें शिव-मन्दिर नामके विद्यार्थीका एक सुन्दर निवासस्थान है। वहाँका राजा है महेंद्र विक्रम। उसकी भार्य्याका नाम है मत्सिका। मैं उसी राजाका पुत्र हूं। मेरा नाम अमितिगति है। मेरे दो मित्र हैं जिनका नाम है धूम्रसिंह तथा अरिमुण्ड एक दिन मित्रोंके साथ खेलते ? हीमान नामके पर्व्वत पर चला गया। उसपर हिरण्य नामका एक साधु रहता था। साधुका जन्म ऊंचे कुलमें हुआ था। उसके एक परम रमणीय सुन्दर कन्या थी, जिसका नाम था सुकुमालिका।

उसकी रूप लावण्यता पर मुग्ध हो मैने साधुसे प्रार्थना की। महाराज, आप इस कन्याका ब्याह मेरे साथ करदें तो अत्युत्तम हो। मेरी प्रार्थना स्वीकृत हो गई। मैं कन्याको लेकर अपने घर गया। कन्याकी सुन्दरता देख धुम्र-सिंहका मन डिग गया। उसने कन्या हरणका बहुत प्रयत्न किया। पर उसका सब परिश्रम निष्फल हुआ। आज मैं आपकी स्त्रीके साथ यहां क्रीड़ा करने आया हूँ। मैं तो अपने आनन्दमें निमग्न था कि इतनेमें इस दुष्ट कपटी मित्रने आकर मुझे तो कील दिया और मेरी स्त्रीको लेकर चम्पत हुआ। यह दुष्ट अब आपके सन्मुख उपस्थित है। अब आप जैसा उचित समझें करें।

चारुदत्तने दोनोंको समझा बुझाकर आपसमें मेल करा दिया। वे दोनों चारुदत्तका गुण गान करते हुए अपने २ घर आये चारुदत्त भी अपने मित्रोंको साथ लेकर घर आया और फिर पठनपाठनमें मग्न हो गया।

चम्पानगरीमें ही एक और सेठ रहता था। उसका नाम था सिद्धार्थ और उसकी स्त्री का नाम था सुमित्रा इनके मित्रावती नाम की एक कन्या थी। वैवाहिक काल उपस्थित होने पर मित्रावती का पाणी ग्रहण चारुदत्त से कराया गया। गृहस्थाश्रम में भी प्रवेश करने पर चारुदत्त को पढ़ने के सिवा दूसरा काम ही नहीं नज़र आता था। एक दिन प्रातः काल मित्रावती अपनी ससुराल से मैके गयी। अङ्गरागादि सुगन्धित द्रव्योंसे सुसज्जित तथा सुरत क्रिया सम्बन्धी दन्त छेदनख छेदादि चिन्हों से रहित पुत्री के शरीर को देख कर सुमित्रा ने पूछा—प्यारी पुत्री! क्या कारण है कि तुम कल शाम को जिस प्रकार भूषण से अलङ्कृत होकर गयी उसी प्रकार हो? प्यारी बेटी! तुम्हारे अधरके अङ्गराज एवं चन्दन भी ज्योंका त्यों क्यों है? सुरत कालमें तो उन्हें नष्ट हो जाना चाहिये। क्या तुम्हारे आचरण से तुम्हारा पति तुझ पर क्रुद्ध तो नहीं हैं? यह सुन मित्रावती ने कहा—माता? पति तो अपनी स्त्री पर तब क्रुध होता है जब उसकी स्त्री उसकी आज्ञा उलङ्घन करे। मैं तो अपने पति को प्राणों से प्यारा समझती हूं। स्त्री के लिये तो पति ही तीर्थ है भला मुझ पर मेरे प्राण प्यारे क्यों कुपित होंगे? पर मेरे अलङ्कारों का ज्यों का त्यों रहने का कारण यह है कि वे सदा विद्याध्यन में ही

अपना समय व्यतीत करते हैं। इसी से उनके साथ सम्बन्ध होने नहीं पाता। पुत्री की बात सुन कर सुमित्रा को बहुत क्रोध आया वह उसी समय चारुदत्त की माता के पास जाकर उलहना सुनाने लगी कि तेरा पुत्र पढ़ा सही पर गुना कुछ नहीं ?। वह तो मेरी समझ में निरा मूर्ख है। कारण कि पढ़ने ही से क्या लाभ—जब कि उसे गुना नहीं ! कहा भी है कि—'ऐसे पढ़ता तो बहुता मिला गुनता मिला न कोय' जब उसे यह भी ज्ञान नहीं कि विवाह हो जाने पर स्त्री पुरुष का क्या कर्तव्य है तो क्या वह खाक पढ़ रहा है ? यदि मैं पहले जानती कि यह इस प्रकार तोताके समान दिन रात रट्ट ही लगाता रहेगा तो मैं कदापि अपनी पुत्री का गला पकड़ कर कुंयें में न ढकेलती? चारुदत्त की माता ने सुमित्रा को किसी तरह समझा बुझा कर घर भेज दिया और अपने देवर के पास जाकर सब वृतान्त कह सुनाया। देवर ने कहा अच्छा, ठहरो, मैं शीघ्र ही सांसारिक भोग विलास में इसका मन आकर्षित करने की चेष्टा करता हूं। यह कहकर रुद्रदत्त वहांसे चल दिया। उसी चम्पापुरीमें एक गणिका रहती थी जिसका नाम था वसन्त तिलका उसके यहां एक और अनेक कला कौशल पारङ्गत परम लावण्या नव प्रस्फुटित यौवन वेश्या रहती थी। उसका नाम वसन्त सेना था। रुद्रदत्त उस वेश्या के यहां आया और कहा कि यदि तुम किसी प्रकार मेरे बड़े भाई के सर्व गुण सम्पन्न पुत्र, चारुदत्त का मन भोग विलाश में लगादो तो तुझे मुह मांगा पारितोषिक मिलेगा। इतना कह कर रुद्रदत्त घर चला गया। रुद्रदत्त ने आकर के महाराज विमलवाहन से भी ये सब बातें कह सुनायी अस्तु महाराजने महावतसे कहला दिया कि जब चारुदत्त बाजार में घूमने निकले तब तुम बसन्त सेना के घरके सामने दो हाथियों को लड़ा देना लड़ाईके कारण रास्ता न मिलनेसे चारुदत्तको जबरदस्ती उसके घरका आश्रय लेना पड़ेगा तब सहज ही में हमारा कार्य सिद्ध हो जायगा। दुर्भाग्यवश एक दिन ऐसे ही जब रुद्रदत्त चारुदत्तको साथ लेकर बाज़ारमें घूमने निकला कि दो हाथी आपस में लड़ते २ वहां आ गये। अब तो चारों तरफका रास्ता ही बन्द हो गया। यह देख रुद्रदत्त झट चारुदत्तका हाथ पकड़ बसन्त सेनाके मकानमें घुस गया। समय बितानेके बहाने वह बसन्त तिलकाके साथ

जुआ खेलने लगा। जुआमें रुद्रदत्त कितने वार हार गया चारुदत्तसे यह बात नहीं देखी गयी और वह स्वयं खेलने लगा। खेलते २ वसन्त तिलकाने चारुदत्तसे कहा—श्रेष्टि पुत्र! मेरे साथ जुआ खेलना तुम्हें शोभा नहीं देता मैं तो अब वृद्धा हो चली। यदि तुम्हें खेलना है तो मेरी एक अत्यन्त सुन्दरी वसन्तसेना नामक लड़की है, उसीके साथ खेलो। मैं उसे अभी बुलवाये देती हूँ। चारुदत्तने कहा—मुझे कुछ भी इन्कार नहीं है, जिसे तुम्हारी इच्छा हो बुलावो। वसन्तसेना बुलायी गयी। चारुदत्तके साथ जुआ प्रारम्भ हुआ। खेलते २ बहुत देर हो गयी। इतनेमें चारुदत्तको कुछ प्यास मालूम हुयी। वसन्तसेनासे उसने जल लानेको कहा—वसन्तसेनाको तो पहले ही इशारा भी दिया गया था। अतः उसने कुछ कामोद्दीपक मादक द्रव्य मिश्रित जल लाकर चारुदत्तको पिला दिया। जल पीनेके कुछ ही देर बाद चारुदत्त मन्मथ व्यथासे व्यथित होने लगा। उसने चाचासे घर चले जानेको कहा। चाचाके घर जाते ही वसन्तसेनाको घरकी ऊपरी छतपर ले जाकर सुरतक्रियाका सुखोपभोग करने लगा। विषय सेवनसे भला किसकी सन्तुष्टी होती है? अस्तु, वह ज्यों-ज्यों काम वासनाकी तृप्ति करता गया त्यों त्यों उसकी लालसा बढ़ती गयी। इस प्रकार उसका अनवरत छः मास वेश्यागृहमें ही व्यतीत हो गया। उसने अपना बहुत सा धन भी वेश्याको देडाला। अब तो मातापिताको पुत्रका व्यसन देख दुःख होने लगा। पर अब पछताये होत क्या चिड़ियां चुग गयी खेत। चारुदत्तको बुलाने केलिए कितने बार नौकर भेजा गया पर भला वे अब वहांसे आनेवाले थे। भानुदत्तने अपकीबार कहला भेजा कि जाकर चारुदत्तसे कहदो कि तेरे पिता बीमार हैं? पर इस बार भी उसके कानमें जूं तक न रेंगी। अन्तमें वेश्यामें पुत्रकी इतनी आशक्ति देख पिताने कहलाया कि जाकर कह दो कि तुम्हारे पिताकी मृत्यु हो गयी, अब शीघ्र आकर अन्तिम संस्कार करो।

पर भला अब पुत्र कहां? वह तो वेश्याके दिखावटी प्रेममें अपनेको भूल ही सा गया था। उसने उसे कहला भेजा कि जाकर कह दो कि पिताजीका चन्दनादि सुगन्धित द्रव्योंसे अग्नि संस्कार किया जाये। पिताने पुत्रके दुर्व्यसन

की पराकाष्टा देख दुःखित हो जिनदीक्षा ग्रहण करली। उधर चारुदत्तकी अवस्था और दिनदिन बुरी होती गई। वह अपना अधिकधन तो पहले ही खर्च- कर चुका था अब बचे बचायेको भी जल्दी २ नष्टकर घरपर हाथ साफ कर दिया। अहा! कर्मकी भी बड़ी विचित्र दशा होती है। वही देविला जिसके पुत्रोत्सव में कितने याचक अयाचकबन गये आज भाग्यके फेरसे याचक सा बन बैठी है! वही देविला जो एक धनवानकी गृहिणी थी आज एक एक दानेके लिए मुंहताज बनी बैठी है। प्यारे भाइयो अगर तुमने स्मरण रखा चारुदत्तके चरित्र का तौ फिर तुम्हें कभी इस दुर्व्यसनमें फंसनेका दुर्भाग्य नहीं मिलेगा। जब चारुदत्तकी दरिद्रताकी खबर वसन्ततिलकाको मिली तो उसने अपनी पुत्रीको एकान्तमें बुलाकर कहा—"पुत्रि! अब चारुदत्तके पास कुछ रह नहीं गया है। अब वह बिलकुल दरिद्र हो गया है। अतः इससे प्रीति छोड़कर किसी दूसरे धनी युवाको फंसाना तुम्हें उचित है। देखो संसारमें किसीको अपने कर्तव्य पथसे विचलित नहीं होना चाहिए। वेश्याओंका यह कर्तव्य है कि निर्धन पुरुष को उसी प्रकार परित्याग करे जिस प्रकार ग्रीष्म ऋतुमें जल रहित सरोवरका पक्षी करते हैं तुम अभी बची हो। शायद तुम्हें इसका ज्ञान न हो इसलिए तुझे समझाना मेरा धर्म है।" माताका कहना सुनकर वसन्तसेना बोली अम्मा, तुम कहती तो ठीक हो पर मुझसे ऐसा अनर्थ कदापि नहीं हो सकता। मेरे जीवनका तो अब यही दरिद्री चिरसंगी है। इसका परित्यागकर मैं कदापि परपुरुषमें अपना दिल नहीं लगा सकती। तबसे वह चारुदत्तके पाससे एक मिनट भी इधर उधर नहीं जाती थी। एक दिन पापिनी वसन्त तिलकाने चारुदत्त और वस- न्तसेनाको भोजनके साथ नशीली चीज़ खिला दी। भोजनकर सोते ही निद्रा ने उन्हें जोरसे धर दबाया। दोनोंको निद्रामें पराधीन देख पापिनी वसन्तति- लकाने चारुदत्तके शरीरका सब वस्त्राभरण उतार एक कपड़ेको गठरीमें बांधकर पाखानेमें डाल दिया। भोर होनेपर कुछ कुत्ते आकर उसका मुख चाटने लगे। चारुदत्त नशेमें लड़खड़ाती जबानसे बोलने लगा कि – प्यारी बसन्तसेना! मैं इस समय गाढ़ी नींदमें हूं। तुम जाओ और मुझे सोने दो उस समय वहींपर एक पुलिसका कर्मचारी खड़ा था। आवाज सुनते ही उसकी दृष्टि वहां गयी।

कर्मचारीने पूछा तूं–कौन है और यहां कैसे आया ? यह सुनते ही चारुदत्त की बुद्धि कुछ ठिकानेपर आयी।

उसे जब याद पड़ा कि यह उसी पिशाचिनी वसन्ततिलकाकी करतूत है तो बहुत घृणा हो गयी। उसने अपना सब वृतान्त उस कर्मचारीसे कह सुनाया। अब चारुदत्तके आगेकी हालत सुनिये। चारुदत्तकी आंखें तो अब खुलही चुकी थी। वह सीधे वहांसे घर चला। वहां पहुंच कर वह ज्योंही घरमें घुसना चाहता था कि द्वारपालोंने अन्दर जानेसे मना किया। चारुदत्तने कहा-तुम मुझे भीतर क्यों नहीं जानेदेते? क्या तुम नहीं जानते हो कि यह मेरा घर है। द्वारपालोंने कहा—चारुदत्त यद्यपि यह तुम्हारा घर है पर इस समय तो मेरे मालिकके यहां गिरवी रखाहुआ है। अतः अब इसपर तुम्हारा अधिकार नहीं। सुनते ही चारुदत्तके चेहरेपर सन्नाटा छा गया। कुछदेर चुप रहकर फिर बोला खैर, क्या तुम्हें हमारी ग़रीबमाताका घर मालूम है ? क्या तुम बता सकते हो कि मेरी स्त्री किस दशामें है ? यह सुन नौकरोंने धन पुत्रके वियोगसे जर जरित शरीरधारी उसकी मांकी जरजरित झोपड़ी बता दी। पुत्र को देखते ही माता उसी प्रकार दौड़ी जिस प्रकार गाय बछड़े केलिये दौड़ती है। उस समय उसकी स्त्री भी—वहीं थी। उन दोनोंका दुःख कहांतक वर्णन करूं माताने पुत्रको अत्यन्त प्यारके साथ गले लगाया। आन्तरिक पवित्रता तो अब उसकी हो ही चुकी थी अस्तु माताने स्नान कराकर उसकी वाह्य-शुद्धी भी कर दी। भोजनान्तर चारुदत्तने अपनी मांसे विदेश जाकर व्यापार करनेकी आज्ञा मांगी। जब चारुदत्तके विदेश जानेका हाल मामाको मालूम हुआ तो वह आया और बहुत समझाया कि तुम मेरे घरपर ही चलकर व्यापार करो—कारण कि मेरे पास काफी धन है। पर चारुदत्तने कहा मामा मेरी इच्छा अब यहां रहकर व्यापार करनेकी नहीं है। अतः आप भी मुझे आज्ञा दें। अस्तु चारुदत्त अपनी माता और स्त्रीको समझा बुझाकर व्यापार केलिए चल पड़ा। उसके प्रेमसे उसका मामा भी साथ हो लिया। कुछ दिन बाद वे लोग एक नदीके किनारे पहुंचे। वहांसे वे अपने माथेपर गाजरकी गठरी लादकर पलाश नगरमें पहुंचे और दुकानपर बैठकर बेंचने लगे गाजरके

व्यापारमें कुछ लाभ हुआ। इसके बाद वे विनौले (रुई) का व्यापार कर बैल लादने लगे। इसमें इन्होंने अच्छा धन कमाया पर बुरे कर्मका प्रभाव अभी तक इनके सिरपर मौजूद था। भाग्यने पलटा खाया और इनके पास जो कुछ भी धन था उसे मार्गमें एकवार लुटेरोंनें लूट लिया। इधर कपासमें भी आग लग गईअब तो वे फिर भाग्य फोड़कर रहगये। वहांसे वे मलय पर्वत पर बसेहुए नगरमें जाकर व्यापार करने लगे। यहांपर उनके भाग्यका सितारा तो चमका था पर लुटेरोंने अबकी बार भी उसको नष्ट किया। वहांसे भी वे चलते बने। कुछ दिन बाद प्रियंगु शहरमें पहुंचे। वहां उनके पिताका एक पुराना मित्र रहता था उसका नाम था सुरेन्द्रदत्त चारुदत्तके पहुंचते ही सुरेन्द्रदत्तने मित्रके पुत्रपर पुत्रवत्' प्रेम दिखाया सुरेन्द्रदत्त उसकी सहायताके आशयसे अपने साथ दूर देशमें व्यापार करनेको ले गया। बारह वर्षबाद जब चारुदत्त खूब धन कमाकर सामुद्रिक मार्गसे जहाज़पर आ रहा था कि सहसा जहाज पानीमें डूब गया। चारुदत्तने किसी तरह लकड़ीका बहता हुआ टुकड़ा पकड़ कर अपनी जान बचाई। अब न तो उसको मालूम था कि मेरा मामा कहां गया और न मामाको मालूम था कि हमारा भानजा कहां गया। अन्तमें वह पूछते ताछते उस शहरमें पहुंचा पर वहां भी उसका ठिकाना न मिला। उधर चारुदत्त जब सामुद्रिक कठिनाइयां झेलते हुए उदम्बरवती नगरीमें पहुंचा तो उसे अपने मामाका हाल मालूम हुआ। इस समाचारसे कुछ सन्तोषित हो--फिर आगे बढ़ा। अबकी बार वह सिन्ध देशान्तर्गत सम्मरी नामक नगरीमें पहुंचा। यहांपर किसीके यहां इसके पिताका बहुत सा धन अमानत पर रक्खा था। उस धनको चारुदत्तने जीर्ण मन्दिरोद्धार तथा दान पुण्यमें व्यय कर दिया। इससे उसकी कीर्ति चारों ओर गूञ्ज उठी। यह देख एक देव उसके दानकी परीक्षा लेने आया। वह मनुष्यका वेष बना जिन मन्दिरमें जाकर रोने लगा। कुछ समय बाद चारुदत्त भी पूजा करनेके निमित्त वहां आया। उसे रोता देख चारुदत्तने कारण पूछा। उसने कहा कि मैं शूल रोगसे पीड़ित एक रोगी हूँ। वैद्यने बताया है कि यदि तुम्हें जीवित मनुष्यका मांस मिले तो तुम अच्छे हो सकते हो अन्यथा नहीं। मैंने सुना है कि आप बड़े दानी हैं

इसलिए कृपाकर मुझे अपने शरीरका मांस दीजिए। इतना कहना ही था कि चारुदत्तने पार्श्व (पसवाड़े) भागका मांस काट मानव छद्मधारी देवको दे दिया। उसका त्याग देख देवने अपना प्रत्यक्ष परिचय दिया और उसके गुण की प्रसंशा करते हुए चला गया। इस तरह वह अपना सब धन दान धर्ममें लगाने लगा कुछदिन वाद वह राजगृहमें आया। वहां उसे एक दण्डी साधूसे भेंट हो गयी। साधूके पूछनेपर चारुदत्तने अपनी सब राम कहानी आदिसे अन्त तक कह सुनाई। साधुने कहा तुम किसी प्रकारकी चिन्ता न करो। मेरे साथ चलो। यहांसे थोड़ी दूर पर एक रस कूपिका है। वहां मनुष्यको मन वाञ्छित धन मिलता है। इस तरह वह क्रूर दण्डी अपने वहकावेमें फंसाकर चारुदत्तको इस कूपिकाके किनारे ले गया।

आरतके चित रहहिं न चेतु। जो मनुष्य जिस चीज केलिए दुःखी रहता है उसे प्राप्त करनेका मार्ग एक मूर्ख भी बतावे तौ भी वह चलता है। दण्डीने चारुदत्तके हाथमें एक तुम्बी थंमाकर कहा—तुम इस खाटपर बैठकर नीचे चले जावो और जलमें पहुंचकर तुम्बीको खाटपर रख देना। मैं पहले तुम्बी निकाल लूंगा फिर तुझे पीछेसे खींच लूंगा। चारुदत्त तो यद्यपि इतने दिन तक वेश्याके यहां रहे पर उसके कपट कहां? क्या भला भुजङ्ग सेवित मलयागिरि चन्दनमें भी विष व्याप्त होता है? अस्तु निष्कपट चारुदत्त कपटी के चंगुलमें फंस ही तो गया। नीचे पहुंच ज्यों ही चारुदत्तने तुम्बी आगे बढ़ाई कि इतनेमें एक मनुष्य (जो पहले ही से कुंवेमें बैठा था) बोला—क्या तूं भी उस नीच क्रूर साधुके चंगुलमें पड़ गया? देखो चारुदत्तने उसकी हालत देखकर पूछा—'भाई, तुम कौन हो और कैसे यहां पहुंचे हो? वह बोला—'मित्र! यदि तुम पूछते हो तो सुनो मैं अपनी दशा वर्णन करता हूँ। वह यों कहने लगाः—मेरा जन्म उज्जयिनी नगरीमें एक वैश्य कुलमें हुआ है। दरिद्रता के चक्करमें पड़कर मैं इधर उधर चक्कर लगाते इस दुष्ट साधूके पास पहुंच गया। इसने मुझे भी इस तरह रस कुपिकाके लोभमें डाल दिया। ज्यों ही कुंयेमें पहुंचकर तुम्बी को मैंने खाटपर रखा कि उसने खींच लिया दुबारा इसने आधे दूर तक खाटको निकालकर उसकी रस्सी काट दी और मैं धड़ामसे नीचे कुंवे

में गिर पड़ा। परन्तु दैव संयोगसे किसी तरह बचकर मैं तबसे यहीं बैठे २ अपने भागपर रो रहा हूँ। यह सुन चारुदत्त व्याकुल हो चला। उस वैश्यके पूछनेपर चारुदत्तने भी अपनी हालत कह सुनाई। तत्पश्चात् चारुदत्तने कहा-- अब तुम यह बताओ कि मुझे क्या करना चाहिए। उत्तरमें उसने कहा— मित्र! पहले तुम तुम्बिका भरकर खाटपर रख दो। जब वह पापी उसे निकाल कर तुम्हारे निकालने केलिए खाटको भीतर फिर नीचे उतारेगा तब तुम एक पत्थर रख देना। पत्थरके वजनको तुम्हारा वजन समझकर वह रस्सी काट देगा। इस प्रकार तुम अपनी जान बचा सकोगे। यही हुआ भी। पहले तुम्बिका खींचकर दूसरी बार पत्थरके वजनको उसका (चारुदत्तका) वजन समझकर खाटकी रस्सी काट इस पापीने अपना रास्ता लिया। उसके चले जाने पर चारुदत्तने फिर उस वैश्यसे बाहर निकलनेका उपाय पूछा। वैश्य बोला— मुझे तो केवल एकही रास्ता सूझ पड़ता है वह भी संकट पूर्ण। खैर, अब मरे को मरनेका भय क्या? सुनो, मध्यान्ह कालमें एक गोह नित्यप्रति जल पीने आया करता है। जब वह जल पीकर लौटने लगे तो तुम उसकी पूंछ पकड़ कर बाहर निकलनेकी कोशिश करना आगे तुम्हारा भाग्य जाने। मुझे तो इस के सिवा दूसरा उपाय नहीं सूझता।

इतना कह वह चारुदत्तसे कहने लगा—मित्र! मुझे इस समय अत्यन्त वेदना हो रही है। अब मरा चाहता हूं। अस्तु, यदि हो सके तो मुझे कुछ कल्याण प्रद उपदेश सुनादो और मेरा उद्धार करो। उसकी दशा देख चारुदत्त का हृदय दयाद्रवित हो चला। उसने नमस्कार मंत्र सुनाया। मंत्र सुनते २ अपना प्राण त्याग किया और महामंत्रके प्रभावसे वैश्यने स्वर्गमें देवपद प्राप्त किया। उधर भास्कर भी अपनी प्रखर ज्योतिसे अन्धकार रूपी पापको खदेड़ते खदेड़ते गगन मण्डलके मध्य भागमें आ उपस्थित हुये। उसी समय तृषासे तृषित हो गोह भी अपने बिलसे निकला। जब वह पानी पीकर लौटने लगा तो चारुदत्तने उसकी पूंछ पकड़ ली। पूछ पकड़े पकड़े वह ऊपर तक निकल चुका था पर अपना बिल मिलते ही गोह उसमें घुस गया और चारुदत्त उस की पूंछ पकड़े लटका रहा। बाहर निकलनेमें अब उसे केवल एक ही हाथ बाकी

रह गया था। दैव योगसे कुछ बकरियां चरते चरते उस रस कूपिकाके किनारे तक आ गईं। अनायास ही एक बकरीका पांव खिसककर बिलके ऊपर जा पड़ा। यह देख चारुदत्तने उसका पांव जोरसे पकड़ लिया। बकरी मैं मैं करने लगी। पर चारुदत्तको ज्ञान कहां कि बकरी कब अपनी टांगके साथ एक मनुष्य को खींच सकती है। वह तो किसी प्रकार अपनी जान बचाना चाहता था। जिस प्रकार समुद्रमें डूबते हुए आदमी बहते हुए तिनकाको भी अपने प्राणके लोभसे लपककर पकड़ता है, ठीक वही हालत चारुदत्तकी थी। अस्तु, बकरी का मिमयाना सुनकर उसका मालिक दौड़ता आया और बिलमें उसका पांव अटका देखकर वहांकी जमीन खोदने लगा। चारुदत्त बोला—भाई जरा धीरे धीरे खोदना। उसकी आवाज़ सुनकर उस गड़रियेने धीरे धीरे जमीन खोदकर चारुदत्तको बाहर निकाल दिया। बाहर निकलते ही चारुदत्त प्राण लेकर भागा उसकी यह हालत देख उस गड़रियेको आश्चर्य तो हुआ अवश्य पर उसने रहस्य जाननेकी कुछ परवाह न कर अपने घरका रास्ता लिया। ज्योंही चारु-दत्त वहांसे भागा कि एक भैंसेने उसका पीछा किया। भागते२ उसके सामने एक गुहा दिखाई पड़ी। चारुदत्तने ज्योंहीं गुफामें घुस जान बचानी चाही कि उसे एक अजगर सर्प गुहाके द्वारपर ही नजर आया। उसने मस्तिष्ककी तीव्र मैंमांशिक क्रियाके साथ ही साथ अपना पैर बढ़ाया और अजगरके मस्तकपर पैर धरकर भीतर घुसगया। शिरपर भार पड़नेके बोझसे सर्पकी आंख खुल-गयी। जागते ही उसकी दृष्टि गुहाके द्वारपर खड़े हुए भैंसे पर पड़ी।

अजगरने उसकी बलि करनी चाही कि भैंसा बिगड़ खड़ाहुआ। और दोनोंमें कुछ दावपेच होने लगा। इतनेमें मौका देख चारुदत्त गुहासे निकल भागा। पर वहां भी दो अन्य भैंसोंने उसका पीछा किया। वह भैंसोंके डरसे अब गिरा तब गिरा हो रहा था। पर जिसकी आयु शेष रहती है उसे काल भी नहीं मार सकता। उसे सामने एक पेड़ नज़र आया। वह उसीपर कूदकर चढ़गया। जब वे भैंसे निरुपाय होकर लौटगये तो चारुदत्त भी पेड़से उतर कर एक नदीके किनारे आया। वहींपर उसे हरिसिख आदि अपने मित्रोंसे भेंट हो गयी। वे चारुदत्तका पता लगाने ही के फिराकमें इधर उधर घूमरहे

थे। सर्वोंने चारुदत्तको गले लगाया। भोजनान्तर सबोंने अपनी अपनी दुख कहानी कह सुनाई। उन लोगोंका वह पारस्परिक सम्मिलन दिवस अत्यन्त आनन्दसे व्यतीत हुआ।

दूसरे दिन सबमित्र वहांसे श्रीपुरकी ओर रवाना हुए। श्रीपुरमें चारुदत्तके पिताका एक मित्र रहता था जिसका नाम था प्रियदत्त। प्रियदत्तके यहां पहुंचनेपर उसने चारुदत्तका बड़ा आदर सत्कार किया और चलनेके समय बहुत सी भोजनकी सामग्री दी वहांसे चलते समय चारुदत्तने श्रीपुरसे कुछ चूड़ियां खरीदी और गान्धार देशमें लेजाकर उसेवेंची। वहां उसे एक आदमी से भेंट हो गयी। चारुदत्तकी करुण कहानी सुनकर उस पुरुषने अपनी सहानुभूति प्रकट करतेहुए कहा—यहांसे अत्यन्त सन्निकट ही एक पर्वतीय संकीर्ण मार्ग मिलता है। पर्वत प्रदेश होनेके कारण बकरोंकी सहायता बिना उसे पार करना बड़ा कठिन है। इसलिए जब तुम बकरोंके द्वारा अपने निर्दिष्ट स्थानपर पहुंच चुकना तब उन्हें मारकर उनके चमड़ोंके थैले बनाकर उसके भीतर घुस जाना और उनको फिर भीतरसे सी लेना। थैलोंको मांसका पिण्डा समझ बहुतसे गृद्ध आवेंगे और तुम्हें उठाकर रत्नद्वीपमें ले जायेंगे। वहां पहुंच जब वे अपनी चोंचसे उन्हें फाड़ने लगे तब तुम चाकूसे थैलेको चीरकर बाहर निकल आना। मनुष्य देखते ही गृद्ध तो भाग जायेंगे फिर तुमलोग स्वेच्छानुसार रत्न ले लेना। रुद्रदत्त उनकी बात सुनकर बड़ा खुशहुआ। मनुष्यके कथनानुसार उसने बहुतसे बकरे खरीदकर चारुदत्तसे कहा कि चलो हमलोग पर्वतपर चलकर जैनमंदिरकी बन्दना करें। परन्तु मार्ग अत्यन्त संकीर्ण है अतः हमें बकरोंपर चढ़कर चलना होगा। चारुदत्तको बकरोंकी हत्याका कुछ भी हाल नहीं मालूम था इसलिए वह जाने केलिये तुरंत राजी हो गया। वहां से आगे बढ़नेपर पर्वत ही मिलता था। अतः रुद्रदत्तने कहा कि आपलोग यहीं ठहरें जबतक मैं आगे जाकर मार्ग देखे आता हूँ पर सबोंने उनको जाने से मना किया। अन्तमें चारुदत्त बकरेपर चढ़कर चला। मार्ग केवल चार अङ्गुल ही चौड़ा था। किसी तरह वह दुरगम मार्ग देखकर लौट ही रहा था कि आधेरास्तेमें उसे रुद्रदत्त आदिसे भेंट होगयी। उन्हें देख चारुदत्तने

कहा—"मैं तो आही रहा था, आपलोगोंको इतनी जल्दी क्या पड़ी थी वहां नहीं ठहरे ? इसपर उनलोगोंने कहा कि आपके आनेमें देरी देख हमलोगोंने समझा कि शायद आपको किसी आपत्तिका सामना तो नहीं करना पड़ा। इसलिए हमलोग चले आरहे हैं। खैर चारुदत्तके पुण्यने सहायता दी और उसने अपना बकरा उसी चार अंगुल चौड़े मार्गपरसे पीछे लौटाया। पर्व्वतपर पहुंचकर मार्गके थकावटसे चारुदत्तको नींद आगयी। उनको सोया जान उन पापियोंने सब बकरोंके गलेपर छूरी चलाई। सबसे पीछे वे लोग चारुदत्तके बकरेको मार ही रहे थे कि बकरा मिमियाने लगा। चारुदत्त जाग उठा। उस ने उस हिंसक पापियोंसे कहा—अरे नीचो ! इन निरपराधी जीवोंकी हत्यासे तुम्हें क्या मिला ? क्या इनलोगोंने तुम्हारा नुकसान किया था ? तुम बड़े निर्दयी हो। जरा सोचो तो सही यदि तुम्हें भी कोई इसी प्रकार निष्ठुरतासे मारडाले तो क्या तुम्हे दुःख नहीं होगा ? लानत है तुम्हारी बुद्धिपर धिक्कार हैं तुम्हारे जीवनपर उत्तम नर जन्म पाकर भी तुम्हें दया नहीं। तुमलोग अवश्य ही मनुष्य रूपमें राक्षस हो।" इस प्रकार चारुदत्तने उन्हें फटकार सुना अपने बकरेको नमस्कार मंत्र सुनाया। कारण कि चारुदत्तके बकरेकी अभी धुकधुकी चलरही थी। मंत्रके प्रभावसे बकरेने मरकर स्वर्गलोकमें देवपद प्राप्त किया। चारुदत्तको अब वहांसे बचनेका कोइ उपाय न मिला। अतः उसने पूर्व कथनानुसार मार्गका ही अनुशरण किया। भाथरीमें घुसकर उसका मुंह सीते ही इस तरह गृद्धोंकी जुटान हुयी मानो "ब्रह्मभोज यजमान कोइ कह दयो।" थोड़ीदेर आकाशमें मंडरा २ कर गृद्ध भातड़ियोंपर झपटे और उन्हें चंगुलमें दबाकर चम्पत हुए। इसबार भी चारुदत्तके दान पुण्यादि धार्मिक कृत्योंपर वेश्यागमनात्मक पापकी विजय हुई। उसकी भातड़ी एक अंधे गृद्धके हिस्सेमें पड़ गई। ज्यों ही वे सब समुद्र पारकर रहे थे कि इतनेमें एक दूसरा पक्षी आकर भातड़ी छीनने लगा। वह झपट झपटकर सबोंके साथ लड़ने लगा। यह देख बूढ़ा गृद्ध भागा। जल्दीबाजीमें तो सभी काम बिगड़ जाता है। अस्तु उसके चंगुलसे भातड़ी समुद्रमें गिरपड़ी। पर वह तुरंत उसे उठाकर भागा। इस प्रकार सातवार भातड़ी गिरी और सातोंवार उस अन्धे गृद्धने अन्य गृद्धोंको

'एकबार यदि सुफल न होतो पुनः करो उद्योग' का पाठ पढ़ाते भातड़ी लेजाकर रत्नद्वीपमें रखदी। ज्यों ही वह गृद्ध चोंचसे फाड़ने लगा कि चारुदत्त छुरीसे भातड़ी चीरकर बाहर निकल आया। गिद्ध तो मनुष्य देखते ही भागचला और चारुदत्त वहांसे अपने मित्रोंकी खोजमें निकले। भूलते भटकते वह एक जिन-मन्दिरमें पहुंच गये। वहां उनने भगवानकी पूजा की। पर बाहर आते ही उनकी एक मुनिराजसे भेंट हो गयी। चारुदत्तके नमस्कार करनेपर मुनिने धर्म-लाभ' का आशिर्वाद दे पूछा—"चारुदत्त तुम यहां कहां ?" मुनिराजके मुखसे अपना नाम सुनकर वह विस्मित हो गया। उसने पूछा—"महात्मन्! आप-मेरानाम कैसे जानते हैं ?" मुनिने अपना परिचय देते हुए बताया कि मैं वही अमितिगति विद्याधर हूं जिसको तुमने बन्धनसे छुड़ाया था। तुम्हारी ही कृपा से मैंने बहुत दिनों तक पुत्र पौत्रादि सुखका उपभोगकर पुत्रको राज्यभार सौंप जिनदीक्षा ग्रहणकी है। मुनिराज अपना वृत्तान्त पूरा ही कर रहे थे कि आकाशमार्गसे विमानपर चढ़कर सिंहग्रीव नामक दो विद्याधर वहां आये। ये दोनों ही गृहस्थावस्थाके मुनिके पुत्र थे और पिताकी वन्दना करने आये थे। वे लोग पहले जिन भगवानकी भक्तिपूर्ण पूजाकर पितृपूजनके निमित्त आये। आते ही पिताकी आज्ञानुसार उनलोगोंने चारुदत्तको इच्छाकार किया। तत्पश्चात् उनलोगोंके पूछने पर मुनिराजने चारुदत्तकृत पूर्व वृतान्तको आद्यो-पान्त कह सुनाया। सुनकर वे दोनों भाई बड़े खुश हुए और चारुदत्तसे बहुत प्रेम करने लगे।

उसी समय वहां पर दो देव विमान पर चढ़ कर आये। उन लोगों ने पहले जिन भगवान की वन्दना की, चारुदत्त को वन्दना की और अन्त में मुनिराज की। सिंहग्रीव से यह नहीं देखा गया। वह बोला—"क्या स्वर्ग के सभी देव तुम लोगों के ही समान ज्ञान शून्य हैं ? सुन कर देवों ने ऐसे प्रश्न पूछने का कारण पूछा। सिंहग्रीव ने जवाब दिया—पूछा अपने वर्ताव से। देखो पहले तुम्हें मुनिराज को प्रणाम करना चाहिए फिर पीछे गृहस्थ को। यह सुनकर देवों ने कहा—"तुम्हारा कहना तो ठीक है परन्तु चारुदत्त हमारे प्रथम गुरु है। इसी कारण मैंने प्रथम इनकी वन्दना की। सिंहग्रीव ने कहा—

अच्छा यही सही परन्तु बतावो तो जरा कि कैसे ये तुम्हारे प्रथम गुरु हैं। पाठक पहले यहां याद रखें कि यह देव वही था जिसने पूर्व जन्म में बकरे का शरीर धारण किया था। और चारुदत्तने जिसे मृत्युकाल में महामन्त्र सुनाया था। अस्तु वह देव बोला।

काशीमें सोमशर्म नामक एक ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम था सोमिला। इसकी दो कन्यायें थीं। उनका नाम था भद्रा और सुलसा। बाल्यकालमें ही सोमशर्मा ने इन्हें सब शास्त्रों में पारंगत बनादिया। उनकी विद्या की प्रसिद्धि सुनकर यज्ञवाल्क्य नामक एक साधु आया और शास्त्रार्थमें पराजित कर उनसे विवाह कर लिया। कुछ दिन बाद इनके एक पुत्र हुआ। लज्जाके वशीभूत होकर उन पापियोंने उस लड़के को एक पीपलके वृक्षके नीचे अकेला छोड़ अपना रास्ता लिया। सुलसा की दूसरी बहन भद्रा, पुत्र को घर उठा लाई और अच्छी तरह पालन पोषण करने लगी। भद्राने बच्चेका नाम पिप्पलाद रखा। कारण कि उसने बच्चे को–पीपल का फल मुंहमें रखते हुए देखा था। माताने बचपन हीसे पुत्रकी शिक्षा प्रारम्भ करदी जिससे आगे चल कर लड़का अच्छा विद्वान निकला। उसने अपने ऐसे नाम रखनेका कारण माता से पूछा और पूछा कि मेरे पिता कौन हैं। पिप्पलाद का अत्यन्त आग्रह देख भद्रा ने सब हाल कह सुनाया। पिताकी निष्ठुरता पर उसे बड़ा खेद हुआ। तब से उसने मन में ठान लिया कि किसी तरह पिता को नीचा दिखाना चाहिए। यह सोच वह एक दिन पिता के पास गया और शास्त्रार्थ करने का आह्वाहन किया। शास्त्रार्थमें यज्ञवाल्क्य हार गये अपनी पराजय स्वीकार करने पर अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर पिप्पलादने अपना सब जीवन चरित्र कह सुनाया। पुत्र की विद्वता पर पिता को अत्यन्त हर्ष हुआ। उन्होंने प्रेम से उसे गले लगाया। इस शास्त्रार्थ से पिप्लाद का नाम चारों ओर फैल गया। अब तो वह सब याज्ञिक ब्राह्मणों में प्रधान गिना जाने लगा। उसी का मैं शिष्य हो गया गुरुजी ने यज्ञ का सब भार मेरे ऊपर रख छोड़ा था। इस तरह मुझे यज्ञ में बकरोंका बलिदान भी करना पड़ता था। मैने अंसीक बकरोंकी जान ली थी इसी पाप से मुझे नरक भी जाना पड़ा और वहांसे निकल कर मुझे पुनः बकरे की

पर्य्याय में जन्म धारण करना पड़ा। इस प्रकार अनेकों बार ब्राह्मणों ने यज्ञ में मुझे काटा और अन्त में महान पुण्योदयसे मैं इन महात्माके हाथ में पड़ा। इस प्रकार उसने रत्नद्वीप जाते समयका रुद्रदत्तद्वारा किये गये प्रायश्चित कर्म का वर्णन किया। अस्तु अवधिज्ञान के द्वारा मुझे इनके उपकारका स्मरण हो गया और मैं इनकी वन्दना करने यहां आया हूं। इसी लिये मैंने अपना आदि गुरु समझ प्रथम इनकी वन्दना की तदनन्तर मुनिराज की, इसके वादको उनके दूसरे साथी ने भी प्रथम वन्दना की कारण बताते हुए रसकूपिका की सब कहानी कह सुनाई। तत्पश्चात् दोनों देवों ने चारुदत्त से पूछा" महात्मन ! हम लोग आपके दास हैं कृपाकर आप हमारे योग्य कुछ आज्ञा दीजिये। चारुदत्तने नम्रता दिखाते हुए कहा कि यदि आप हमारे मित्रोंके दर्शन करादें तो बड़ी कृपा हो। सुनते ही वे देव चले और थोड़ी देरमें चारुदत्तके मित्रोंको लाकर सुपुर्द कर दिये। ये लोग मित्र के वियोग से अत्यन्त दुखी हो रहे थे। अतः चारुदत्त के देखतेही उनकी प्रेम धारा वह चली। अन्तमें देवोंने कहा—पुण्यवान ! अब आप धन कमानेका परिश्रम न करें चम्पामें आप को उतना ही धन मिलेगा जितनी आपकी इच्छा है। यह देख सिंहग्रीवने दोनोंको रोक दिया और कहा—आप अब अधिक परिश्रम न करें। आप लोग अपने २ स्थान पर जाइये। यह सुन वे देव अपने २ स्थान पर चले गये। पश्चात् सिंहग्रीव अत्यन्त उत्सव के साथ उसे अपने नगर में ले गया। वहां बहुत दिन तक सुख पूर्वक व्यतीत कर चारुदत्त अनेको विद्याओं में निपुण हो गया। उसकी कीर्ति अब चारों दिशाओंमें फैल गयी थी। वड़े २ राजा महराजाओंने अपनी लड़की की शादी उन से कर दी इस प्रकार चारुदत्त अब ३२ रमणियों को साथ ले राज्यलक्ष्मी के साथ रमण करने लगा।

सिंहग्रीवके एक अत्यन्त सुन्दरी वहन थी। वह बीणा वजानेमें अत्यन्त दक्ष थी। उसका प्रण था जो बीणा वजानेमें मुझे हरा देगा उसीके साथ अपना व्याह करूंगी। कितने आये और गये होंगे पर किसीने उसको हराया नहीं एक दिन सिंहग्रीवने चारुदत्तसे अपनी वहनकी प्रतिज्ञा सुनातेहुए कहा कि एक अच्छे ज्योतिषीने मुझे वताया है कि इसका विवाह चारुदत्त नामक

व्यक्तिसे होगा। जो इससे भी बढ़कर इस विद्यामें चतुर होगा अतः तुम इसे ले जाकर इसका विवाह अपने यहां करदो। कारण कि यह विवाहके योग्य हो गयी है। चारुदत्तने सिंहग्रीवकी प्रार्थना स्वीकार की। जब चारुदत्तवहांसे चम्पानगरी केलिए रवानाहुआ तो बहुतसे विद्याधर उसके साथ आये। चारुदत्तकी आगवानी सुन राजा विमलवाहन भी उससे मिलने आये। चारुदत्तने राजाको बहुत सा उपहार दिया। राजाने चारुदत्तको योग्य जानकर अपना आधा राज्य दे दिया। तत्पश्चात् चारुदत्त अपनी बूढ़ी माता तथा स्त्रीसे मिला। चिरकालसे बिछुड़े हुए पुत्र एवं पतिको पाकर माता और स्त्री को जो हर्ष हुआ उसका अनुभव तो वही कर सकता है जिसको ऐसा मौका मिला हो। लेखनीमें क्या शक्ति है कि इस प्रसन्नताका वर्णन करे? वसन्तसेनाकी हालत भी सुनिये। चारुदत्तको पाखानेमें डालकर उसकी निष्ठुरामाता वसन्त तिलका तो न मालूम कहां चलोगई थी। जब यह समाचार वसन्तसेनाको मिला तो अत्यन्त दुःखित हुयी। तबसे उसने प्रण करलिया कि मैं अन्य पुरुषका मुख नहीं देखूंगी। मेरेलिए—एकहि धर्म एक व्रत नेमा'—चारुदत्त है। अतः उनका आगमन सुन वह फूली न समायी और अपना सब धन लेकर चारुदत्तके साथ रहने लगी। चारुदत्तके साथ जो जो विद्याधर आये थे उनको उसने अत्यन्त आदरके साथ विदा किया। कुछदिन बाद चारुदत्तने सिंहग्रीवकी बहन गन्धर्वसेनाकी शादी वसुदेवके साथ कर दी कारण कि उसने उस गन्धर्वकन्याका प्रण पूरा कर दिया था। चारुदत्तकी पटरानी होनेका सौभाग्य उसके मामाकी पुत्रीको मिला। इसके नीचे वसन्तसेना और बसन्तसेनाके बाद अन्य स्त्रियोंकी गणना होने लगी। इस प्रकार उसने बहुत काल पर्यंत विषय सुखका उपभोग किया। एक दिन वह अपने महलके ऊपरी छतपर टहल रहा था। उसने देखा कि ये बादल तो पहले एकत्रित थे और पीछे छिन्नभिन्न हो गये। अन्तमें उसे ज्ञान प्राप्त होगया कि इस निस्सार संसारमें एक न एक दिन सब भाईबन्धु, धनदौलत इसी प्रकार एक दूसरेसे अलग अलग हो जायेंगे। वह उसी समय सबसे उदासीन होगया और अपने बड़े पुत्रको राज्यभार सौंप स्वयं जिनदीक्षा लेली। तत्पश्चात् अपने उग्रतप

के प्रभावसे वह सर्वार्थ सिद्धमें जाकर देव हुआ। भाइयो! बिचार करो कि एक समय चारुदत्तके घरकी क्या हालत थी और दुर्व्यसनमें पड़कर क्या हुयी। वही चारुदत्तकी मां जिसे बाल्यकाल ही से गगनस्पर्शीय महलोंमें निवास करनेका सौभाग्य प्राप्त था, पीछे पुत्रके कुकर्मसे उसे टूटी फूटी झोपड़ीमें जीवन निर्वाह करना पड़ा! वही चारुदत्त जिसके नहानेके जलमें इत्र छींटा जाता था पश्चात उसे इसी जीवनमें पापके प्रायश्चित स्वरूप पाखानेके दुर्गन्धमें नरक यातना भोगनी पड़ी! भाइयो वसन्ततिलकाका उपदेश सुना! याद रखो कि वेश्या तभी तक पुरुषको प्यार करती है जब तक उसके पास धन दौलत है। ये अपवित्रताकी खान हैं। ये धर्मकर्म धनदौलत रूपी लवंलताको मूलोच्छेदन करनेवाली टिड्डियां हैं। मूर्ख इनके प्रसंग सुखका उसी प्रकार अनुभव करते हैं जिस प्रकार शुष्क मांसको चाबानेवाला कुत्ता। अस्तु, जो धर्मात्मा पुरुष इन पापात्मा वेश्याओंका परित्यागकर जिनेन्द्रदेवका अमृतमय उपदेश ग्रहण करते हैं वे शुभ्र कान्ति चान्द्रमाके समान संसारमें प्रियदर्शन होते हैं और मृत्युके वाद स्वर्गके अधिकारी होते हैं।

धन कारन पापनि प्रीति करैं, नहिं तोरत नेह जथा तिनको
मद मांस बजारनि खाय सदा, अंधले व्यसनी न करैं घिनको
गनिका संग जे सठ लीन भये धिक है धिक है तिनको तिनको

पांचवीं शिकार व्यसन कथा।

श्रेणिकने गणधरसे पूछा—भगवन्! वेश्या गमनके दारुण दुःखका वर्णन तो आपने किया पर कृपाकर आप यह बतावें कि शिकार खेलनेसे किस किसको दुःख उठाना पड़ा है। भगवान् बोले—"श्रेणिक, आखेटके फलस्वरूप दुःख तो बहुतोंको भोगना पड़ा है, पर उन सबोंमें ब्रह्मदत्तका नम्बर पहला है, अतः मैं उसीकी कथा तुम्हें सुना रहा हूँ ध्यान देकर सुनो। अवन्ति देशमें उज्जयिनी नामकी एक नगरी है। वहांके राजा ब्रह्मदत्तको शिकारमें जितनी आसक्ति थी उससे कहीं अधिक प्रजा पालनमें अरुची। एक

दिन जंगलमें आखेटके लिये जानेपर एक दिगम्बरमुनिसे भेंट हो गयी। शिलासीन ध्यानावस्थित मुनिको देखनेसे मालूम होता था, मानो वे एक प्रस्तरकी मूर्ति हो। उस दिन मुनिके प्रभावसे राजाको एक भी शिकार नहीं मिला। दूसरे तीसरे दिन भी राजाकी वही हालत रही। उनके हृदयमें अत्यन्त छोभ हुआ। उसने मुनिसे बदला लेनेके लिये दारुण कर्म प्रारम्भ किया। एक दिन मुनि नगरमें आहार करने चले गये। उधर ब्रह्मदत्तको बदला लेनेका मौका आ पहुंचा। उसने शिलाको इतना गर्म करा दिया कि तृण रखते ही वह झुलस जाता था। आहार करके लौटनेपर मुनि उस शिलापर ध्यानावस्थित हुए। बैठते ही उनका शरीर जलने लगा, उन्हे असह्य वेदना होने लगी पर वे अपने आसनसे टससे मस नहीं हुये। अन्तमें वे ध्यानाग्निसे अपने कर्मोंका नाशकर केवल ज्ञानके द्वारा स्वर्गधाममें जा बसे। देवोंने आकर उनके धैर्यकी भूरि भूरि प्रशंसा की और अपने २ स्थानको चले गये। इधर सात दिन भी बीतने न पाया कि यह घटना संघटित हुई थी ब्रह्मदत्तके शरीरमें कोढ़ फूट निकला। उसकी व्यथासे उन्हें एक जगह बैठना भी कठिन हो गया। रोगकी निवृतिका कोई मार्ग न देख उन्होंने अपना शरीर अग्निको अर्पण किया। इस प्रकार आर्त ध्यानसे मरकर नारकी ब्रह्मदत सप्तम नरककी भावना भोगने चला गया। सप्तम नरकमें पड़कर जीवोंको क्या क्या दुःख झेलना पड़ता है, इसका वर्णन पहले कर दिया गया है। अतः वहांसे निकलकर वह सर्प, कुत्ता, गधा, व्याघ्र, कुक्कुट, अजगर आदि निन्दक जीवोंकी पर्य्यायमें अनेकों जन्म भटकता रहा।

अबकी बार उसके पापका बोझ कुछ हलका हुआ। उसका जन्म एक धीवर (मल्लाह) कुलमें हुआ। उस बार उसने कन्याका शरीर धारण किया। पर यहांपर भी पापने उसका पीछा किया। जन्मसे ही उसके माता-पिता—मर गये थे। उन लोगोंने उसे ले जाकर एक सघन जंगलमें छोड़ दिया। वहां भी वह किसी २ प्रकार अपना जीवन निर्वाह करने लगी। एक दिन वह अपनी झोपड़ीमें बैठी थी कि आर्यिकाओंका एक झुण्ड सामनेसे निकला। उसने जाकर संघकी प्रधान आर्यिकाको नमस्कार किया। आर्यिकाका नाम था कल्याणमाला। कन्याकी बुरी हालत देखकर आर्यिकाने उसे अणु-

व्रत ग्रहण करनेका उपदेश दिया। उस धीवर कन्याने इसे ग्रहण किया। आर्यिका राजगृह जा रही थीं। अतः वह भी संग हो ली। पर मार्गमें पहाड़-की कन्दरामें उसे आर्यिकाका संग छूट गया। जब वह कन्या सोई हुई थी कि एक सिंहने उसे खा डाला। मरनेपर अच्छे परिणामोंके फलस्वरूप उसका जन्म राजगृहके एक सेठ कुवेरदत्तके घरमें हुआ, पर वहां भी दुर्गन्धने उसका पीछा नहीं छोड़ा। यद्यपि वह विवाह करने योग्य हो गयी तथापि उसके दुर्गुण से कोई उसका पाणिग्रहण नहीं करता था। इससे सेठको अत्यन्त दुःख था।

एक दिन श्रुतिसागर मुनि राजगृहमें आ गये। शहरके सब लोग वन्दना करने गये। भला महात्माओंका दर्शनामृत कौन पान नहीं करना चाहता? अस्तु कुवेरदत्त भी वहां गया। वन्दना करनेके बाद समय पाकर उसने मुनि-से प्रार्थना की कि—भगवन्! यह कन्या इतनी सुन्दरी होनेपर भी दुर्गन्धा क्यों है? इसे कृपाकर आप बतावें। मुनिराज बोले—"यह जीव संसारमें जैसा पुण्य वा पाप कर्म करता है, उसीके अनुसार उसे सुख दुःख भोगना पड़ता है। "ठीक ही है, जैसा कर्म करे जो जगमें सो तैसा फल पावे। यदि कोई करीलका बीज बोये तो उसे आम कहांसे मिलेगा। इस प्रकार मुनिने उस-के पूर्व जन्मकी सब कहानी कह सुनाई। कन्या अपने जन्मका हाल सुनकर रो पड़ी और बोली,—"हाय! कहां मेरा राजकुलमें जन्म और कहां यह अप-वित्र स्त्री पर्य्याय? भगवन! अब आप कृपाकर कुछ ऐसा मार्ग दिखाइये जिससे मैं इससे मुक्त होऊँ। नाथ! आज नरकोंके सब दुःख मेरी आंखोंके सम्मुख नृत्य कर रहे हैं। आपकी कृपासे अब मुझे जाति स्मरण हो गया। मुझे अब अच्छी तरह ज्ञान हो गया कि पापका फल कैसा भयानक तथा विष परिप्लुत वहिरेव मनोहरा होता है।" धीवर कन्याकी वात सुनकर मुनिने उपदेश दिया, तुम षटरस त्याग व्रत करो। इससे तुम्हारा स्त्रीलिंग नष्ट हो जायेगा और तुम्हें देव पद मिलकर धीरे २ मोक्ष पद मिल जायेगा। कन्या बोली—"नाथ! यदि यह बात है तो आप कृपाकर मुझे इस व्रतका स्वरूप समझा दीजिये। मुनिराज कहने लगेः—पुत्री! आरम्भमें तो एक महीनेतक प्रतिदिन एक रस छोड़ना चाहिये और एक ही स्थानपर बैठकर अपनी शक्तिके अनुसार एक

वक्त वा दो वक्त भोजन करना चाहिये। इसी प्रकार लगातार छः महीने तक करनेसे यह व्रत पूर्ण होता है। तत्पश्चात् जिन मन्दिरकी प्रतिष्ठा करानी चाहिये अथवा गुरुकी आज्ञानुसार विद्यादानादि धर्म कार्यमें अपना धन खर्च करना चाहिये। अन्तमें मण्डल बनवाकर शान्तिविधान और अभिषेकादि करना चाहिये। इस समय छः रसोंका भी विशेष रूपसे त्याग करना चाहिये। समयपर जोभी भोजनको मिले उसे सन्तुष्ट हो ग्रहण करना चाहिये।

पर भोजनके पहले एक और बात याद रखनेकी आवश्यकता है, वह यह कि पहले भोज्य पदार्थके अष्टांश भागसे देव, गुरु और शास्त्रकी पूजा करे, तदन्तर गुरुकी आज्ञा ले आप स्वयं भोजन करे। पुत्रि! इस व्रतसे कुछ तकलीफ तो अवश्य होती है पर भावी फलके बिचारनेसे यह अत्यन्त सुगम मालूम पड़ता है। सांसारिक कष्टसे पीड़ितोंके लिये यह व्रत सर्वथा ग्राह्य है। मुनिकी आज्ञा शिरोधार्य कर कन्याने यथाविधि व्रतका परिपालन किया। इस व्रतके प्रभावसे वह अबकी बार पटनाके राजा महाराज शक्तिसिंहका सुपुत्र हुवा वहां उसका नाम वज्रसेन रखा गया। बड़े होनेपर राजाने राज्यका सम्पूर्ण भार बज्रसेनपर छोड़ दिया और आप तपस्वी हो गये। बज्रसेनने भी चिरकालतक पुत्र पौत्रादि सुखका उपभोग कर अन्तिम समयमें जिन दीक्षा ले ली। पतनके बाद उत्थान हुआ और कुछ ही दिनोंमें उसने कर्मोंका नाशकर मोक्ष पद प्राप्त किया।

श्रेणिक! देखा आखेटका प्रभाव? संसारमें राज्य पद उसे ही प्राप्त होता है जो तपभ्रष्ट नहीं होता। फिर भी यह कितने खेदकी बात है कि मनुष्य ऐसा अत्युत्तम मानव जन्म धारणकर भी उसकी पूर्ति न कर आखेटादि पाप कर्म में अपनी प्रवृत्ति लगाता है। नरककी यातनावोंको तो दूर रखो, पहले देखो कि शिकार करने वालोंका हृदय कितना कठोर होता है। वे सुन्दर कोमल शरीर धारी मृग-मृगियोंकी हत्यामें ही अपनी बहादुरी समझते हैं। उनकी आंखसे सर्वदा क्रोधकी ज्वाला लपटती रहती है, पर भला ऐसे निरपराध जीवोंकी हत्या करने वाले वीर कहे जांयगे? कदापि नहीं। यह तो उनकी स्वार्थान्धता है, क्रूरता है, निष्ठुरता है। भाइयो! यदि तुम्हारे हृदयमें लेशमात्र भी दयाका संचार है,

यदि तुम्हें अपनी मनुष्य पर्याय मिलनेका गौरव है तो निकाल दो ऐसी क्रूर वृतिको अपने हृदयसे इसीमें तुम्हारा हित है, यही तुम्हारे उत्थानका मार्ग है और यही तुम्हें नरकसे निकालकर ब्रह्मदत्तके समान मोक्ष पदारूढ़ करने वाला है। अस्तु, यदि इस उपदेशका कुछ भी प्रभाव तुम्हारे हृदयपर पड़ा तो जिन शिरोमणि श्री वीर भगवान्का यह शान्तिमय उपदेश हृदयङ्गम करो, यही तुम्हारे सुखका साधन है। यही तुम्हारे मोक्षका मार्ग है।

कानन मैं वसे ऐसो आन न गरीब जीव प्रानन सो प्यारो प्राण पूंजी जिस यहै है।
कायर स्वभाव धरै काहू सों न द्रोह करै, सव ही सो डरै दांत लिये तृन रहै है ॥
काहू सो न रोष पुनि काहूपै न पोष चाहै, काहू के परोष परदोष नाहिं कहै है।
नेक स्वाद सारिवेकों ऐसे मृग मारिवेकों, हा हा रे कठोर तेरो कैसे कर वहै है ॥

छट्ठी चौर्य-व्यसन कथा।

नीचनकी संगत रहै, करै नीच सब काम ।
मूरख जन फंस जात हैं देख ऊजरो चाम ॥
देख ऊजरो चाम दामकी खातिर धरम गमावे ।
ऊच नीचका ख्याल करैना सबको अंग लगावे ॥
जगकी झूठन जानि गनिकाको, मूरख मन ललचावे।
हा! धिक धिक ऐसे जीवनको गनिका संग रहावै ॥

श्री गौतम गणधरको नमस्कारकर महाराज श्रेणिकने पूछा कि महात्मन्! इन कथाओंका वर्णनकर आपने मेरा हृदय एकदम पवित्र कर दिया। अब आप कृपाकर यह बताइये कि चोरी करनेसे किसको २ दुःख भोगना पड़ा है? भगवान् गणधरने कहा—तुम्हारा यह प्रश्न अत्युत्तम है। साधारणतः यही समझना कि चोरी करनेसे संसारमें दुःख रहित कोई नहीं रहा, पर सबोंमें अधिक क्लेश शिवभूति नामक ब्राह्मणको हुआ। अतः मैं उसकी कथा तुम्हें सुनाता हूँ। यह कथा तुम सर्वदा ध्यानमें रखो जिससे तुझे परद्रव्योपहरण-रूपी लोभके

गढ्ढेमें न ढकेल दे। तुम्हें पहले ही कह दियागया है कि धर्म प्राप्तिका प्रथम सोपान कथा श्रवण है।

भारतवर्षके अन्तर्गत बनारस नगर है। इस नगरके सौष्ठवके सम्बन्ध में पाठकोंके सम्मुख किसी एक कविका छोटा सा वाक्यांश ही रखना पर्याप्त होगा जिसमें उसने कहा है कि "मैं मन मांहि विचार लखौं है बनारसमें न विना रस कोई।" वहांका राजा जयसिंह है। उनकी भार्या जयवती अशेष गुणवती है। शिवभूति उन्हींके यहांका पुरोहित था। उसकी सत्यवादिताकी प्रसिद्धि उतनी ही थी जितनी कि उसके वेदशास्त्रता की। वह अपने यज्ञोपवीतमें सर्वदा एक छूरी लटकाये रहता था। छूरी लटकानेका तात्पर्य यह था कि उसने प्रण कर लिया था कि मैं कभी झूठ नहीं बोलूंगा और यदि कभी भी मेरे मुखसे असत्य बचन निकल जाय तो मैं उसी समय इस छूरीसे अपनी जीभ काट दूंगा। इसी प्रतिज्ञाकी घोषणाके कारण लोग इसे सत्यघोष भी कहा करते थे। इसकी सत्य प्रियतासे मुग्ध हो, राजा भी इसका बहुत आदर करते थे। लागोंका भी इतना काफी विश्वास इसके ऊपर था कि सबकोई अपना धन इसके पास अमानत रख जाया करते थे। एक दिन पद्मपुरका सेठ अनायास बनारस आया। उसे अपना धन अमानत रखना था लोगोंसे पूछनेपर सभीने सत्यघोषको इसके योग्य बताया। लोगोंके कथनानुसार सेठ पुरोहितके पास गया। पुरोहितने सेठका बहुत आदर सत्कारकर आनेका कारण पूछा। सेठने कहा "महाराज! मुझे कहीं देशान्तर जाना है। मैं अपना सब धन साथ लेजाना उचित नहीं समझता। क्यों कि न मालुम कब कैसा दिन आजाय। इसलिए मैं आपकी सेवामें आया हूँ आप कृपाकर मेरे चार रत्न अमानत रख लीजिए। इनका दाम पांच करोड़ रुपया है। इसलिए वस्त्रमें बांधकर इन्हें सौंपे देता हूँ। आप सावधानीसे इनकी रक्षा करें। यदि कदाचित मुझे धनहानि उठानी पड़ी तो फिर मैं इनके द्वारा अपनी जीवन यात्रा सुख पूर्वक निर्वाह कर सकूंगा। महाराज! ध्यान रहे कि मेरे आगे की जीवन लीला सर्वथा इसीपर निर्भर है। पुरोहितजी बोले—सेठ साहब! मैं पराया धन अपने हाथसे नहीं छूता। जितने लोग हमारे पास अमानत रखने

आते हैं वे सब अपने ही हाथसे मेरे सन्दूकमें रखदेते हैं और फिर जब इच्छा होती है। आकर निकाल ले जाते हैं। अस्तु, आप भी इसमें रख दीजिए शिवदत्तके कथनानुसार धनपाल अपने रत्न रखकर व्यापारके लिए रवाना हुए। बारहवर्ष बाद जब सेठ सामुद्रिक मार्गसे अपने घर लौटा आरहा था कि दैव-योगसे उसका जहाज टक्कर खाकर टुकड़े२ होकर पानीमें डूबगया। धनपालके धनरत्न तो रत्नाकरमें विलीन हो गये पर वह किसी तरह एक टूटी पटरीके सहारे जलसे बाहर आया। समुद्रसे बाहर निकलकर वह अपने शहरमें गया। और वहां उसने जिनेन्द्रका दर्शन किया। दो दिन तक वहीं ठहरकर सेठ पुरोहितजीके मकानपर पहुंचा। सेठको देखते ही पुरोहितजीने गिरगिटके समान अपना रंग बदला एक गुण होनेसे ही मनुष्य सर्वप्रिय होता फिर जिसमें दो गुण हो उसका तो पूछना ही क्या ? एक तो पुरोहितजी पुरोहित (पुर वा गांव की भलाई करनेवाले) ही थे दूसरे सत्यवादी भी। अतः सर्वदा दश आदमी उनको घेरे रहते थे। उन्होंने अपने नाकके स्वरकी परीक्षा लेतेहुए कहा—'मालूम होता है कि आज मुझे कोई भारी कलंक लगेगा। सब लोगोंने उनके गुण की प्रशंसा करतेहुए कहा—"महाराज! भला आपके समान सत्यवादीपर कलङ्क लग सकता है ?" लोग यह कह ही रहे थे कि धनपाल वहां आबैठा पर महाराजने उसकी ओर दृष्टि भी न डाली। यह देख सेठ हक्का वक्का हो गया। कुछदेर ठहरकर रत्नोके लिए प्रार्थना की पर पुरोहितजीने तो ताल ही बदल दिया। उन्होंने कहा—क्या सेठ! समुद्रमें जहाज डूबनेसे यह दुर्दशा हुयी है। अच्छा ठहर मैं तुझे कुछ दान दिला देता हूँ। फिर उन्होंने लोगोंसे कहा—देखा मैं कहता था। कि आज मुझे कुछ कलंक लगेगा, सो सामने ही आगया। सबोंने पुरोहितके हां में हां मिला दिया।

बेचारे धनपालको पागल कह सभीने घरसे निकाल दिया। उसने राजा के पास अपनी अर्जी डाली पर वहां भी सुनाई नहीं। कारण कि राजा तो पुरोहितजीकी सत्य वक्तृता पर लट्टू होरहे थे। बेचारे सेठ को तो अब लहु की आंसू पीकर दिन काटना पड़ा। सहसा दुःखसे छुटकारा पानेका उसे एक उपाय सूझपड़ा। वह यह कि--जब आधीरात होती, तब वह राजप्रसादके पीछे

जाता और वहां एक वृक्षपर चढ़कर बड़ेजोरसे चिल्लाता—"महाराज ! आप धर्माधर्मके बिचारक हैं। आप मेरी प्रार्थनापर ध्यान दीजिए। दुःखी दीनोंको राजाका ही भरोसा है। महाराज, आप दयालु हैं दीनानाथ हैं, अशरण हैं। मैं समुद्र यात्राके समय अपने चाररत्न पुरोहितके पास रख आया पर वह उसे हड़पना चाहता है। आप कृपा कर मेरा रत्न दिला दीजिए।" इसी प्रकार चिल्लाना सेठ केलिए नियम सा हो गया। एक दिन जयवतीने राजासे कहा—"महाराज ! कृपाकर इस दरिद्रीकी प्रार्थना क्यों नहीं सुनते"। पर राजाने उसे पागल बताकर बात टालनी चाही। लेकिन रानीके अत्यन्त आग्रहपर राजाने इसकी सत्यताकी जांच करनेको रानीके ऊपर ही भार दिया। इसके बाद रानी और राजा जुआ खेलने लगे तबतक पण्डितजी भी पूजा करनेको आधमके। पूजा करनेके बाद रानीने पुरोहितको अपने साथ जुआ खेलनेको बुलाया। पुरोहित तो पहले हिचकिचाये पर राजाके कहनेपर वे रानीके साथ जुआ खेलने बैठे। खेलते खेलते रानीने अपनी बुद्धिमानीसे पुरोहितजीके द्वारा गत दिनके भोजन का हाल जान लिया। पर वेचारे पुरोहितको इतनी अक्ल कहां जो स्त्रीके त्रिया चरित्र' को जान सकें। उन्होंने अपने घरकी सब बातें रानीसे कह दीं। इसके बाद जयवतीने नेत्रके इशारेसे अपनी दासीको समझाकर उसे पुरोहित जीके मकानपर भेजा। दासीने पुरोहितानीजीसे घरकी सब बात बतातेहुए कहा कि पुरोहितजीने धनपालके रखे हुए रत्नोंको मांगा है। ब्राह्मणी बिगड़कर बोली—"चली जा यहांसे, मेरेपास कहांसे रत्न आया।" लौटकर दासीने सब बातें रानीसे कह सुनायी जयवतीने युक्तिका उपयोग न देखकर पुरोहितजीसे कहा—पण्डितजी हममें और आपमें अब अंगुठीकी बाजी रहे कि यदि आप जीतलें तो मैं अपनी अंगूठी हार जाऊं और यदि मैं जीतलूं तो आप अपनी अंगूठी हार जांय। पण्डितजी राज़ी तो हुए पर पहले ही दावमें अंगूठी ग़ायब ! रानी ने पुनः दासीको अंगुठी दे इशारा किया। पर कुछदेर बाद दासी फिर निराश हो कर लोट आई। अबकी बार जयवतीने पुरोहितजीके गलेका हार जीत लिया और दाशीको पुनः ब्राह्मणीके पास भेजा। दासीने जाकर कहा कि देख, पुरोहितजीने यह हारकी निशानी देकर मुझे भेजा है कि, मैं बड़े संकटमें फंस-

गया हूं जीता देखना चाहती हो तो हारके देखते ही रत्नोंको देदो। ब्राह्मणी थी तो स्त्री ही न! रानीके चक्करमें फंसकर उसे रत्न देदेना पड़ा। दासीने रत्न लाकर रानीको देदिया। रानी रत्न पाते ही राजाको गुप्तरीतिसे देकरबोली- "महाराज अब आज जुआ खेलना बन्द हो।" कहते ही खेल बन्द होगया और रानी आप वहांसे उठकर चलीगई। जाते समय इसने पण्डितजीकी अंगुठी और हार भी लौटा दिया। महारानीके जाते ही राजाने पूछा--पुरोहित जी! हां, यह तो कहिए कि शास्त्रमें चोरी करनेवालेको क्या दण्ड लिखा है? पण्डितजी अपनी काबिलीयत छांटने लगे। उन्होंने कहा कि महाराज! यातो उसे शूलीपर चढ़ाना चाहिये अथवा तीखे शस्त्रसे टुकड़े २ करा देना चाहिए। ऐसा न करनेसे राजा पापका भागी होता है। राजाने फिर पूछा—महाराज चोर इस योग्य न होतो? इसपर पुरोहितने और जोर देते हुए कहा-चोर कैसा ही क्यों न हो उसे अवश्य उपरोक्त दण्ड देना चाहिए। इसपर महाराजने अधिक न कहकर चारों रत्न पुरोहितके सामने रख दिये। देखते ही पुरोहितजी भींगी बिल्ली बन गये। राजाने ब्राह्मणको बहुत धिक्कार देकर कहा—पुरोहित जी,, शूलीका मजातो मै आपको चखाता पर ब्राह्मण कुलमें जन्मलेनेसे इस दंडसे आपकी रक्षाकी जाती है। अब आपको यह आज्ञा होती है या तो एक थाल गोबर खाओ, या अपना धनदौलत सुपुर्दकर मेरे राज्यसे निकल जाओ और नहीं तो मेरे यहां जो चार पहलवान हैं उनकी चार २ मुक्कियोंकी मार सहो। पण्डितजीने सोचा कि बड़े क्लेशसे मैंने धनोपार्जन किया है, उसे मैं नहीं दे सकता। हां, गोबर खा सकता हूं। सामने गोबरकी थाली रखी गई पर एक ग्रास भी न खा सके और बोले महाराज! मैं पहलवानोंकी मुक्कियां ही सह लूंगा, मुझसे गोबर नहीं खाया जाता। पहलवान बुलाये गये। पहल- वानोंका घूसा पूरा ही नहीं हुआ था कि पुरोहितके प्राण पखेरू उड़गये। राजा ने उनका सबधन जप्तकर ब्राह्मणीको देशसे निकाल बाहर किया। उधर आर्त- ध्यानसे मरकर पुरोहितजी राजाके खजानेपर ही सर्प हो गये। इसके बाद महाराजने धनपालको बुलाकर उसके रत्न देदिये। इतना ही नहीं, प्रस्तुत राजाने सेठकी बुद्धिमानीकी प्रसंसा करते हुए उन्हें अपनी ओरसे भी पांच गांव

जागीरीमें देकर उसको घर पहुंचवा दिया। एक दिन राजा अपना कोषागार देखने गये। वे वहां पहुंचे ही थे कि इतनेमें एक सर्पने आकर उन्हें काटलिया। यह सर्प वही ब्राह्मण था जो पहलवानोंकी मुक्कियां खाकर मरा था। बहुतसे बिषहर बुलाये गये। उन लोगोंने मन्त्रके प्रभावसे सब सर्पोंको बुलाया और कहा कि जिस सर्पने महराजको काटा है वह ठहरे और बाकी सब चले जांय। मन्त्रवादियोंके आज्ञानुसार सबसर्प तो अपने २ स्थानपर चलेगए पर गन्धमादन नामक सर्प जिसने राजाको काटा था—ठहर गया। मन्त्रवादियोंने कहा 'नागराज' या तो तुम राजाका विष हरण करलो या धधकती हुई अग्नि कुण्डमें कूद पड़ो। सर्पका सुनना ही था कि वह तुरत अपने जलनेकी परवा न कर अग्निमें कूद पड़ा और देखते २ भस्मीभूत हो गया। उसके मरते ही महाराजने भी अपनी जीवनलीला समाप्त की।

भाइयो! भूलकर भी किसीसे बैरविरोध न करो। देखो, सर्प होकर भी उसे अपने बदलेका ख्याल रहा। चाहे न्याय से या अन्यायसे, किसी भी प्रकारकी हिंसा क्यों न हो पर उसका बदला तुम्हें अवश्य मिलेगा। क्या राजा की हालत नहीं देखी? किया तो था उन्होंने न्याय ही पर जाना पड़ा पशुयोनिमें। उधर सर्पकी भी हालत सुनो। वह मरकर नरकमें करोड़ो वर्ष भटकता रहा। चोरीसे बढ़कर कोई दूसरा पाप नहीं है इसीने कितनेको शूलीपर चढ़ाया, कितने कितनेके नाककान हाथपांव आदि कटवाया और सत्यघोषके समान कितनो की कीर्तिमें कलंक कालिमा लगाई। कहां तक कहाजाय, चोरीसे संसारमें कठिन से कठिन दुःख भोगना पड़ता है। बिना पूछे हुए किसीकी कोई चीज़ लेना चोरी कहलाती है। परन्तु चोरीसे भी अधिक पाप उसे होता है जो दूसरेकी अमानत रखी हुई चीज हड़पना चाहता है। इसलिए ऐसे निन्दक और दारुण दुःख दायक कर्मका सर्वथा परित्याग करना चाहिए। अस्तु, बुद्धिमानोंको इस कर्मका परित्याग व जिनधर्म स्वीकार करना चाहिए। वही धनपालके समान तुम्हें दुःख सागरसे पार कराकर स्वर्गरूपी रत्न प्रदान करेंगे।

छप्पय—चिंता तजैन चोर, रहत चौंकायत सारे। पीटे धनी विलोक, लोक निर्दयी मिलि मारै। प्रजापाल करि कोप, तीयसौं रीष उड़ावै। मरे महा दुःख देखि, अंत नीची गति पावै॥ अति बिपति मूल चोरो बिसन, प्रकट त्रास आवै नजर। पर नित्त अदत्त मंगार गिन, नीति निपुनपर सैवकर॥

सातवीं पर स्त्री-व्यसन कथा।

गौतम स्वामीको सभक्ति नमस्कार कर महाराज श्रेणिकने पूछा कि—भगवन्! अब आप कृपाकर परस्त्री सेवनसे दुःख भोगनेवाले की कथा भी सुनाइये। गौतम गणधरने कहना प्रारम्भ किया कि—राक्षस द्वीपान्तर्गत लङ्का नामक राक्षसोंका एक निवासस्थान है। सुन्दरतामें उसकी तुलना स्वर्गसे दी जाती है। राक्षस कुलोत्पन्न रावण उसका राजा था। उसके कुम्भकर्ण और विभीषण नामक दो भाई थे। और इन्द्रजीत तथा मेघनाद आदि बहुतसे पुत्र थे। रावणके बहुत सी स्त्रियां थीं। उन सबोंमें प्रधान थी मन्दोदरी। रावण की नीतिज्ञतासे उसकी सबप्रजा प्रसन्न रहती थी रावण तीनखण्डका राजा था इसीसे उसके यहां चक्ररत्न भी उत्पन्न हो गया था जो सबसुखोंका मूल है। रावणके प्रतापको सब महिपाल ही क्यों प्रत्युत् वरुण कुवेरादि देव भी नतमस्तक हो स्वीकार करते थे। रावणका बहनोई खर-दूषण था। इसकी राजधानी अलङ्कापुर थी। इसके भुजबलसे राक्षसबंशी और बानरवंशी सब उसकी आज्ञा पालन करते थे। एक दिन कैलास पर्वतपर श्रीबाल मुनिको केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। सब विद्याधर और देवोंको वहां आया जानकर रावण भी पहुंचा। स्वस्व सत्त्यानुसार सभोंने भगवानके सम्मुख व्रत नियमादि करनेका प्रण किया पर रावण मौन साधे रहा। बालमुनिके कहनेपर उसने भी प्रण किया कि जो स्त्री मुझको नहीं चाहेगी उसे मैं बलात्कार ग्रहण नहीं करूंगा। ऐसा नियम धारण करनेका कारण यह था कि उसे अपनी सुन्दरतापर घमण्ड था। सुनकर भगवान बोले, तुम्हारी इच्छा। परन्तु देखना, कहीं इससे विचलित न होना। व्रत धारण कर रावण अपने घर चला गया। उसके प्रजा पालनकी योग्यतासे सारे संसारमें उसकी प्रसिद्धि हो चली। महाराज श्रेणिकने पूछा—"स्वामिन्! रावणने दूसरे की स्त्री क्यों और किस प्रकार हरणकी थी। इसपर भगवान बोले—"रावणने जिस स्त्रीका अपहरण किया था वह रामचन्द्रकी भार्या थी। वे कौशल देशान्तर्गत अयोध्या नगरके राजा, दशरथके पुत्र थे। राजा दशरथके चार रानियां थी। कौशल्यासे रामचन्द्र, सुमित्रासे लक्ष्मण, कैकयीसे भरत और पराजितासे शत्रुघ्नका जन्म हुआ।

एक दिन राजा दशरथ सभामण्डपमें बैठकर दर्पणमें अपना मुख मण्डल देखरहे थे। अनायास ही उनकी दृष्टि उनके कानके सफेद बालपर पड़-गयी। उसे देखते ही राजाके हृदयमें वैराग्य उत्पन्न होगया। अस्तु, उन्होंने विचार किया कि इस अन्तिम अवस्थामें राज्यभार रामचन्द्रको सहर्ष दे दूं और मैं जिनदीक्षा ग्रहण करलूं। क्यों कि संसारके अज्ञानान्धकार केलिए यह ज्ञान भाष्करके समान है। विचार निश्चित होते ही उन्होंने सब कुटुम्बियोंको बुलाया और उनके सम्मुख रामचंद्रको राज्य सौंपना चाहा। जब यह समाचार केकयीको मिला तो वह रोती हुयी राजाके पास आकर बोली—"महाराज!" क्या आपको स्वयंवरके समयका बचन याद है? यदि याद हो, तो मेरी आशा पूरी कीजिए। राजा दशरथने कहा—"हां मुझे याद है तुम्हें जो इच्छा हो मांगो केकयी बोली—स्वामी इधर तो आप बनबास केलिए राज्य छोड़नेको तैयार हुए हैं उधर भरत भी। तो मैं अभागिनी भला कैसे अकेले जीवित रह सकूंगी। इसलिए यदि आप उचित समझते हैं तो भरतको राज्य दीजिए और रामचंद्र को वनवास। दशरथ तो ज़बान हार चुके थे; वेचारे बड़े फेरमें पड़े। अब उनकी ज़बानमें ताकत। नहीं रही अब तो इस जटिल प्रश्नने उन्हें किंकर्त्तव्यविमूढ़ सा बनादिया। उनसे कुछ भी कहते न बनता था। वे बड़े दुखित हुए। इतने में रामचन्द्र आगये। पिताकी उदासीनता देख उन्होंने मन्त्रियोंसे इसका कारण पूछा। मन्त्रियोंने सब वृत्तान्त कह सुनाया। सुनकर रामचन्द्रने धीरता से कहा—पिताजी इतने चिन्तित क्यों हैं? मेरी समझसे तो पिताजीको अपने बचनका प्रतिपालनकर भरतको राज्य देना चाहिए और मैं अपने पिताकी आज्ञा पालन करनेको सर्वथा तैयार हूँ। जो हो! मैं तो प्राणपणसे पिताकी आज्ञा पूर्ण करनेकी कोशिश करूंगा। इतना कहकर उन्होंने भरतके मस्तकमें राज्य-तिलक कर दिया और लक्ष्मणको साथ ले वहांसे चल दिये। पुत्रकी यह अश्रु-तपूर्ण धीरता राजासे न देखी गयी। पुत्रके वियोग होते ही उन्हें मूर्छा आगयी।

रामचन्द्रने माताको बहुत समझाया बुझाया और प्रणामकर लक्ष्मणके साथ बनको रवाना हुए। रामचन्द्रको बन जाते देख उनकी पतिव्रता स्त्री सीता भी संग हो गई। युवराजके अगाध प्रेमने प्रजाजनोंको भी खीच लिया। बहुत

सी प्रजा उनके साथ हो गई। रामचन्द्रने उन्हें बहुत रोका पर मानता कौन है? कुछ दूर आगे जानेपर इन्हें एक अत्यन्त अन्धकारमय अटवी मिली। इसके पास ही अथाह जलसे भरी हुई एक नदी बह रही थी। रामचन्द्र और लक्ष्मण तो सीता को साथ लेकर जल्दी २ नदी पार होगये परन्तु और लोगों केलिए असंभव हो गया। पीछे रामचंद्रने केकई माताका आगमन सुनकर सन्मुख आये और नमस्कार किया। भाईके देखते ही भरत प्रेमसे व्याकुल होगये। उन्होंने रामचन्द्रसे बहुत प्रार्थनाकी कि आप चलकर राज्यसिंहासनको अलंकृत करें। पर रामचन्द्रने कहा—"प्रिय भरत! पुत्रका कर्तव्य है कि पिताका बचन पालन करे। तुम यह कदापि न समझो कि मैं माताके द्वेषसे जंगलमें आया हूँ। मुझे तो पिताजी की आज्ञा पालन करना है उन्होंने देखा कि अब यहां बिना कुछ कठोरता दिखाये काम नहीं चलेगा। इसलिए उन्होंने कहा कि भरत, पिताजीने तुम्हें बारह वर्ष तक राज्य शासन करने की आज्ञा दी है, इस बातका मुझे बहुत आनन्द है। इसके सिवा मैं अपनी ओरसे तुम्हें दो वर्ष के लिए और आज्ञा देता हूं। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि उसके पहले कदापि नहीं लौट सकता। भरत, यदि तुम्हें मेरे पुनर्मिलन की इच्छा है तो आग्रह छोड़ दो और सीधे जाकर राज्य करो। अन्तमें भरत निरुपाय होकर लौट आये और राज्य करने लगे। भरतके चले जानेपर रामचन्द्र वहांसे रवाना होकर धीरे २ चित्रकूट पर्वतपर आ पहुंचे। थोड़े समय यहां विश्रामकर वे मालव देशकी ओर चले। रास्तेमें उन्होंने वज्रजंघकी शत्रुओंसे उनकी रक्षाकी। आगे बढ़नेपर बनमाला आदि राज पुत्रियोंसे लक्ष्मणका विवाह होगया। कुछ दिन ठहरकर उन लोगोंने वंसगिरि पर्वतपर तपस्या करतेहुए श्रीदेशभूषण और कूलभूषणकी रक्षा उनके शत्रुओंसे की। तत्पश्चात वे लोग घूमते फिरते दण्डक बनमें आये। यह भयप्रद बन बहुत भयंकर था तथापि वे लोग निडर होकर उसमें घुसगये। उस बनमें जब उन लोगोंने प्रवेश किया तो कुछदिन चढ़चुका था। सीताने भोजन बनाया पर भोजन करनेके पेस्तर उन्होंने विचार किया कि कुछ देर तक किसी अतिथिकी प्रतीक्षा कर लेनी चाहिए। कारण कि—यदि भोजनान्तर कोई अतिथि आगया तो मैं किस प्रकार उसकी सेवा करूंगा। इतने ही में दो चारण मुनि

वहां आ गये। रामचन्द्रने उनका पूर्ण रूपसे विधि सहित आहारदान दिया वहीं वृक्षपर एक जटायु नामक गृद्ध रहता था। वह रामचन्द्रजी की भक्ति देख-कर मनही मन पछताने लगा कि यदि आज मैं भी मानव जीवन धारण किये होता तो ऐसा सुअवसर कदापि हाथसे न जाने देता। अस्तु यदि पुण्यके प्रभावसे इस पर्य्यायमें जन्म लूंगा तो इसी प्रकार महात्माओंकी सेवा करूंगा। इस प्रकार वह श्रद्धा भक्तिके भावसे ओतप्रोत होने लगा।

दण्डक वन था बहुत सूनसान। इसलिए रामचन्द्रने श्रद्धा भक्ति द्वारा मुनिराजकी पूजाकर पूछा—"भगवन्! यह जंगल क्यों इतना सूनसान है तथा इसका नाम दण्डक क्यों पड़ा"। मुनिराजने कहा कि इस देशके राजाके नामपर इस जंगलका नाम रखागया है। वह बहुत क्रूर था। एकबार बहुतसे दिगम्बर मुनि वहां आये। उनके नग्न रूपसे उसे बहुत घृणा हुयी। उसने क्रोधमें आकर उन्हें तिलके समान कोल्हूमें पेल दिया। सच है, पापियोंका हृदय बड़ा कठोर होता है। एक मुनिको क्रोध आगया, उनके क्रोधसे एक ज्योति निकली देखते २ मनुष्य, पशु और, राजाको क्षणमात्रमें जलाकर राख करदिया। इस प्रकार वह राजा मरकर नरकमें गया और अब फिर जन्म धारण कर जटायु नामक गृद्ध हुआ है। वह इसी जंगलमें रहता है। यही कारण है कि यह वन इतना सूनसान है और इसी कारण इसका नाम दण्डक पडा। क्यों कि वही दण्डक नामक राजा यहां राज्य करता था। अपने पूर्व जन्मकी हालत सुनते ही जटायु धड़ामसे पृथ्वीपर गिरपड़ा। यह देख सीताको बहुत दया आई। इसने उसके ऊपर जल छिड़का और उसकी मूर्छा दूर की। तत्प-श्चात् जटायूने अपनी भाषामें अपने उद्धार केलिए मुनिसे प्रार्थना की। मुनिने उसे सम्यक्त्व ग्रहण करनेका उपदेश किया। मुनिके कथनानुसार उसने पांच अणुव्रत स्वीकार किये। और जीवोंकी हिंसा न करनेका प्रण किया। सीता उसका प्रण देख उसका पालन पोषण स्वयं करने लगी। संध्याके समय लक्ष्मण जंगलमें गये। रास्तेमें उन्हें किसी फूलकी सुगन्ध आई। वे उधर ही चले। कुछ दूर आगे चलनेपर उन्होंने देखा कि एक सघनवांसके विहड़के ऊपर एक सुन्दर खड्ग लटका हुआ है। वह चन्दनादि सुगन्धित द्रव्योंसे सुशोभित था। उसका

नाम चन्द्रहास खड्ग था। वह इन्द्रका खड्ग था। इसके बाद गौतम भगवानने इसीके सम्बन्धमें दूसरी कथा प्रारम्भ की।

एक अलंकारपुर शहर था। उसका राजा खरदूषण था। उसकी स्त्रीका नाम सूर्पनखा एवं पुत्रका नाम शम्बूक था। वह खड्ग सिद्धिके लिए मंत्र साधनकर रहा था। मन्त्र सिद्धि होनेकी अवधि बारह बर्ष थी। उसने एकदिन उपवास और एक दिन खाली जल लेकर अवधी पूर्ण की उसके गुरुने इस मन्त्रको सिद्ध करनेकी इतनी ही अवधी बताई थी। गुरुने यह भी कहा था कि जब खड्ग ऊपरसे उतर आवे तो तुम उसे आठदिन तक हाथसे न छूना। आठवें दिन जिन भगवानकी पूजाकर उसे अपने हाथमें लेना. अभी इसका बारह बर्ष सात ही दिन व्यतीत हुआ था कि लक्ष्मण वहां आ गये। उन्होंने कौतुहल बस उस खड्गको अपने हाथमें लेलिया और चलाना चाहा। उन्हें यह नहीं मालूम था कि इस बीहड़में बैठकर शम्बूक मंत्र सिद्ध कर रहा है। चक्र चलाते ही वह सारा बांसका बिहड़ और उसके साथ सम्बूक भी कटकर गिरपड़ा। बांस और पुत्रको कटा देख पहले उसकी माताने सोचा कि पुत्र अपनी मंत्र सिद्धिका प्रभाव दिखा रहा है। उसे पुत्रकी सिद्धिपर अत्यन्त आनन्द हुआ। उसने कहा—"पुत्र उठो,, आवो आज मैं तुझे गले लगाऊं। बहुत दिन बाद आज तुम्हारी मनोकामना पूर्ण-हुयी है। जब उसे अपने पुत्रकी मृत्युका ज्ञानहुआ तो वह उसके शिरको अपनी गोदीमें लेकर छाती पीट २ कर रोने लगी। पीछे पुत्र-शत्रुकी खोजमें चली। थोड़ी दूर आगे जानेपर उसने एक सुन्दर पुरुष देखा। समझ गयी कि यही मेरे पुत्रको मारनेवाले है। पर लक्ष्मणकी सुन्दरताने उसे मोहित करदिया। अब उसने सोचा कि इस युवा पुरुषके साथ अपना बिवाह ही क्यों न करलूं इस प्रकार बहुत सोच बिचारकर उसने षोड़श बर्षिया बालिकाका रूप बनाया अपनी माया जालमें फंसाने केलिए वह लक्ष्मणके पास जाकर रोने लगी। ठीक ही कहा है कि स्त्रियोंका सबसे अधिक बल उनकी आंसूमें है। लक्ष्मणके पूछनेपर उसने कहा कि मैं अपने पिताके साथ अपने ननिहालसे घर जारही थी। पर जंगलमें मुझे पिताजीका साथ छूट गया। अब मैं निस्स-हाय होकर जंगलमें रोरही हूँ। इस प्रकार उसने "त्रिया चरित्र" के दूवारा

लक्ष्मणको फंसाना चाहा। पर विवाहका प्रस्ताव सुनते ही लक्ष्मणने कहा—कि अच्छा है ताकि तुम मेरे ज्येष्ठ भ्रातासे विवाह करलो। कारण कि बड़ेभाईके रहते छोटा भाई किसी वस्तुका अधिकारी नहीं है। तुम जाओ और उनसे प्रार्थना करो। तुम यह न समझो कि मैं बहुत सुन्दर हूँ। यदि तुम मेरे भाई को देखोगी तो तुम्हें मालूम होगा कि मुझमें और उनमें सुमेरुपर्वत और और सरसोंका फरक है।

लक्ष्मणके कथनानुसार सूपनखाने रामचन्द्रके पास आकर अपना सब हाल कह सुनाया। जब रामचन्द्रको मालूम हुआ कि लक्ष्मणने मेरे पास भेजा है तो उन्होंने उससे कहा—"बालिके! तुम मेरे योग्य नहीं हो। कारण कि तुम पहले मेरे लघुभ्रातासे अपनी विवाहकी इच्छा प्रकटकर चुकी हो। अब तुम मेरी भ्रातृजाया (भाईकी बहू) के समान होगयी। इसलिए तुम फिर लक्ष्मण ही के पास जाओ। इस प्रकार वह कितने बार रामचन्द्रके पास गई और कितने बार लक्ष्मणके पास आई ठीक है कामा तुराणां न भयं न लज्जा।" सीताने उससे कहा—"तुम बड़ी मूर्ख मालूम पड़ती हो। क्या तुम्हें ज़रा भी अपनत्वका ख्याल नहीं है। ज़रा सोचो तो सही, कि कहीं काकके संसर्गसे भी मकान काला हुआ है। सीताके इस गहरे कटाक्षसे सूर्पणखाको बहुत क्रोध हुआ। उसने सीतासे कहा—अच्छा ठहर यदि मैं तुझे काकके संसर्गसे ही मकान काला होते दिखा दूं। तब तुम मेरानाम कह देना। यह कहकर वह चली गई। अपने पति (खरदूषण) के पास रोतीहुई जाकर धड़ामसे पृथ्वीपर गिर-पड़ी। खरदूषणने झट उसे उठाकर बैठाया ऐसी दयनीय दशाका कारण पूछा सूर्पनखाने कहा—"स्वामी आज मेरा सर्वनाश होगया। इस जंगलमें दो मनुष्य ठहरेहुए हैं। उन लोगोंने मेरे पुत्रको मारडाला पुत्रकी मृत्युका हाल सुनकर खरदूषणने अपना कलेजा थांभ आगेका हाल पूछा। सूर्पणखा कहने लगी "नाथ! जब मैं अपने पुत्रको मरा देख उसका शिर गोदीमें लेकर रोरही थी उस समय उन दोनोंमेंसे एकने आकर मुझे बहुत छेड़छाड़ किया। वे पापी मेरे सतीत्वका नाशकरना चाहते थे। पर यह आप ही के पुण्यका प्रभाव है कि मैं किसी तरह उन दुष्टोंके हाथसे बचकर आयी हूं। प्राणनाथ! आप ज़रा उन

पापियोंकी नीचतापर बिचार कीजिए। स्वामी! ऐसे अपमानको सहनकर जीने से तो मर मिटना ही अच्छा है।"

खरदूषण शीघ्र ही राम लक्ष्मणसे लड़नेकी तैयारी करने लगा। उनकी युद्धकी तैयारी देख मन्त्रियोंने राय दी कि—महाराज शीघ्रतासे कार्य नष्ट हो जाता है। वे असाधारण बली ही मालूम पड़ते हैं। कारण कि जब उन लोगों ने आपके बारह बर्ष तक तप किये हुए पुत्रको मार दिया है तो दूसरेकी क्या बात। इसलिए उचित है कि यह खबर आप लंकाधिपति रावणके पास भी भेजें। भानजेके दुखःसे दुखित हो वे जरूर आपकी सहायता करेंगे। मन्त्रियों के कथनानुसार रावणके पास दूत भेजागया। उधर जब लक्ष्मण रामचन्द्रके पास आये तो रामचन्द्रने उनसे कहा—क्यों समझे वह कन्या कौन थी। मुझे तो मालूम होता है कि वह राक्षसवंशी है और हमलोगोंको देखने आयो थी। अभी इन लोगोंमें बातचीत हो ही रही थी कि खरदूषण अपनी सेनाके साथ सामने आपहुंचा। सबसे पहले सीताकी आंख उसपर पड़ी। स्त्रियोंका कलेजा ही कितना वह डरकर झठ रामचन्द्रके शरीरसे लिपट गयी। रामचन्द्रने जब दृष्टि ऊपर उठाई तो देखा कि अपार सैन्यकी भीड़ पैरकी धूलीसे आकाशको आच्छादित करते हुए आगे आरही है। उन्होंने लक्ष्मणको इशारा किया कि शीघ्र धनुष ठीक करो। पर लक्ष्मणने कहा—"स्वामी" आप यहां निर्भीक हो बैठें। कारण कि सीताको अकेले छोड़कर आपका जाना उचित नहीं। आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। मैं शीघ्र ही इन्हें अपने कर्त्तव्यका प्रायश्चित कराकर लौटता हूँ। पर एक प्रार्थना और है वह यह कि यदि मुझे आपकी आवश्यकता होगी तो मैं सिंहनाद करूंगा, उस समय आप मेरी सहायता कीजिएगा। इतना कहकर लक्ष्मण धनुषबाण लेकर रणभूमिकी ओर चले। उस समय लक्ष्मणकी धीरताने विद्याधरोंको चकित कर दिया। युद्धभमिमें पहुंचते ही लक्ष्मणने विद्याधरोंको ललकारा। लक्षमणके ऊपर बाणकी वर्षा होनेलगी। पर लक्षमण शत्रुसेनाके हजारों बाणोंको एकही सरसे छिन्नभिन्न करदेते थे। उनकी अपूर्ण बीरता देख विराधित नामके एक विद्याधरने सोचा खरदूषणसे पितृबैर निकालनेका अब यही मौका है यह सोचकर उसने लक्षमणके पास जा नमस्कार

कर अपनी इच्छा प्रकट की। लक्ष्मणने पूछा कि मैं तुम्हारी सहायता करनेको सर्वथा तैयार हूँ। मैं सपथपूर्वक कहता हूँ कि तनमन धनसे आपकी सहायता करूंगा। बस, इसी कारणसे मैं आपके पास आया हूँ। अब तो लक्ष्मणका बोझ कुछ हलका हो गया। यह कहकर विराधित खरदूषणकी सेनासे लड़ने लगा। और लक्ष्मण खरदूषणसे। देखते ही देखते लक्ष्मणने खरदूषणकी सेना को परास्त करदिया। खरदूषणके अगनित सैनिक धराशायी हो गये। खर-दूषणकी पराजयका हाल सुनते ही रावण पुष्पक विमानपर चढ़कर उसकी सहायता करने आया। मगर परम सुन्दरी सीतापर उसकी दृष्टि पड़ी। काम वा यों कहिये कि कालके वशीभूत हो रावणने उन्हें प्राप्त करना चाहा अस्तु, उसने अपनी विद्याको सीताको लाने केलिए भेजा विद्या गयी तो सही पर उसकी सब शक्ति थक गयी। अंतमें तब रावणने अपनी विद्यासे उन्हें लानेका कोई दूसरा उपाय पूछा। विद्याने कहा कि यदि आप सिंहनाद करें तो रामचन्द्र वहां से हट जायेंगे और आप उन्हें प्राप्तकर सकेंगे। केवल एकही उपाय है दूसरा नहीं। रावणने किया भी ऐसा ही। सुनते ही रामचन्द्रको मालूमहुआ कि लक्ष्मण संकटमें है। अतः जटायूको सीताकी रक्षाका भार देकर आप समर प्राङ्गणमें चले। थोड़ी देरमें रामचन्द्र लक्ष्मणके पास पहुंच गये! इधर रावण तो घातमें था ही वह तुरंत सीताको लेकर चम्पत हुआ। सीताको रोते देख जटायू उसपर झपटा और अपने नख चोंचोंसे उसका शरीर घायल करने लगा। रावणको इसपर अत्यन्त खेदहुआ उसने इतने जोरसे उसके गालमें थप्पड़ लगाया कि वह अचेत हो जमीनपर गिर पड़ा। रावणका मार्ग अब तो निष्कंटक हो गया। वह आगे बढ़ा। यह घटना देख रत्नजटी नामक एक विद्याधरको अत्यन्त क्रोध हुआ वह भी रावणसे लड़ने आया पर रावणने एक विद्याधरकी इतनी धृष्टता देखकर उसकी सब विद्या छीनकर इसे समुद्रमें डुबो दिया। पर दैव योगसे उसे कुछ स्थल मिलगया। वहां आकर अपना वस्त्र एक कपड़ेमें बांध आकाशमें उड़ाने लगा, जिससे आकाशगामियोंकी दृष्टि इधर पड़जाय। उधर पापी रावण सीताको लिए हुए जा रहा था। रोतीहुई सीताने उससे कहा—"अरे नीच! पापी। क्या तुम्हें परस्त्री सेवनका पाप मालूम नहीं है। तूं मुझको

लेजाकर क्या करेगा। क्यां तुम यह नहीं जानते हो कि यह एक भूमगोचरी की स्त्री है और मैं आकाशगामी विद्याधर हूँ इस प्रकार दोनोंमें सामदामकी लड़ाई चल ही रही थी। कि रावणने सीताको लेजा कर लङ्काके बगीचेमें रख दिया। इधर जब रामचन्द्र लक्ष्मणके पास पहुंचे तो उन्होंने देखा कि लक्ष्मण तो अच्छे हैं। पूछनेपर लक्ष्मणने कहा कि मैने सिंहनाद नहीं किया है हो सकता है कि किसी दुष्टने किया हो। इस प्रकार दोनों भाइयोंमें बातचीत हो जानेपर रामचन्द्र अपनी कुटीपर आये। पर वहां तो आते ही देखा कि, सीता नदारद। वे मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरपड़े। जब ठण्ढी वायुके स्पर्शसे उन्हें कुछ चेतना हुई तो वे अचेतन वृक्ष तथा पर्वतोंसे पूछने लगे कि क्या तुम लोग जानते हो सीता किधर गई है ? कुछ भी पता न पानेसे रामचन्द्र पुनः स्त्री-वियोगसे मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़े। इतनेमें लक्ष्मण और विराधित भी वहां आ पहुंचे। रामचन्द्रने लक्ष्मणसे कहा 'लक्ष्मण' मालूम होता है कि कोई पापी सीताको हरण कर ले गया। यह सुनकर लक्ष्मणको बहुत दुःख हुआ। दोनों भाई मिलकर रोनेलगे। विराधितने उन्हें किसी प्रकार समझा कर शांत किया। यहींपर बिराधितसे सुग्रीव आकर मिला और कहाकि — बिराधित ! यदि तुम्हारे स्वामी मेरी सहायता करें तो मैं शीघ्रही उनकी स्त्रीका पता लगा सकता हूँ। बिराधितने यह हाल रामचन्द्रसे जाकर कहा। रामचन्द्रने बड़े आदरसे सुग्रीवसे मिलकर उनका कुशल मंगल पूछा। मैं किष्किन्धाका राजा हूँ। मेरे तारा नामकी अत्यन्त सुन्दरी स्त्री है। उसपर मुग्ध होकर एक विद्याधरने उसका सतीत्व नष्ट करना चाहा। वह मेरे ही समान रूप बनाकर एक बार घरमें घुस गया। मेरी स्त्रीने उसे पहचान लिया और घरमें नहीं आने दिया। अब उसने हमारे ही समान चलना भी सीख लिया और एक दिन उसे घरमें आते देख मैंने कहाकि—पापी ! तू कौन है ? और किस लिये मेरे घरमें घुसना चाहता है। उत्तरमें उसने भी ठीक ऐसा ही जवाब दिया कि तूं मेरे घरमें क्यों घुसा जाता है ? यह बिचित्र लीला देखकर मेरे मन्त्रियोंकी भी बुद्धि ठिकानेपर आगई। उन लोगोंने हम दोनोंको अंदर घुसनेसे रोक दिया और कहा कि जबतक यह निर्णय न हो जायगा कि सच्चा सुग्रीव

कौन है तब तक किसीको हम लोग घरमें न घुसने देंगे। आज मेरा बड़ा भारी पुण्य है कि आप सरीखे महात्माका दर्शन हुआ है। अब आप कृपाकर इसका निर्णय कर दीजिये। बस, यही दुःख कहना है। यह सुनकर रामचन्द्रने सुग्रीवको धैर्य धराया और कहा कि मैं तुम्हारी प्रिया अवश्य तुझे दिला दूंगा पर तुम्हें भी अपनी प्रतिज्ञाका ख्याल करना चाहिये। वह रामचन्द्रको अपनी राजधानीमें ले गया। नकली सुग्रीवके पास दूत भेजा गया। वह बड़ी भारी सेना लेकर आया और असली सुग्रीवको युद्ध भूमिमें अपनी गदासे मूर्छित कर दिया। उसके चले जानेपर सुग्रीवको होश हुआ। उन्होंने रामचन्द्रसे पूछा—'महाराज! आपने क्यों इस पापीको जाने दिया।' पर रामचन्द्रने कहा 'सुग्रीव मैं तुझे पहचान भी नहीं सका। इसलिये कहीं धोखामें तुम्हारा ही प्राण न चला जाय, यह सोचकर मैंने उसको नहीं मारा। खैर रामचन्द्रने फिर उसे बुलाया। सेनाके साथ खूब सज धजकर वह आया तो सही पर रामचन्द्रको देखते ही उसका वह स्वरूप नहीं रहा। वह साहसगति विद्याधरके रूपमें आगया। यह देख सबोंने असली सुग्रीवको पहचान लिया। सुग्रीवका बहुत आदर हुआ और वह वियोगसे कृषित शरीरवाली अपनी प्यारीके साथ सुख भोगने लगा। इस प्रकार उसे छः दिन बीत गए। उसको अब अपनी प्रतिज्ञाका कुछ भी ख्याल न रहा। उधर ज्यों ज्यों दिन बीतने लगा त्यों त्यों रामचन्द्रका दुःख भी दिन दूना रात चौगुना होने लगा। उन्होंने लक्ष्मणको सुग्रीवके पास भेजा। लक्ष्मणको देखते ही सुग्रीव बहुत घबड़ाया और कहा कि नाथ, आप मेरी गलती माफ करें मैं शीघ्र ही अपनी प्रतिज्ञा पूरी करता हूँ। तत्पश्चात सुग्रीवने रामचन्द्रके पास जाकर क्षमा प्रार्थनाकी और सब विद्याधरोंको आज्ञा दी कि यदि तुमलोग मेरा जीवन चाहते हो तो जाकर सीताका पता लगा लाओ। सब विद्याधर सुग्रीवकी आज्ञा शिरोधार्य कर चले। उनमें एक विद्याधर उसी दिशाकी ओर चला जहां रत्नजटी एक समुद्रमें अपनी ध्वजा फहरा रहा था। ध्वजा देखते ही वह विद्याधर आकाश मार्गसे नीचे आया और रत्नजटीको पहचानकर पूछा—"मित्र! तुम यहां कैसे आ पड़े।" इसपर रत्नजटीने अपना सब वृतान्त कह सुनाया। यह

सुनकर रत्नजटी उसे बिमानपर सुग्रीवके पास ले आया और सुग्रीवसे उसकी भेंट कराई। वह शीघ्र ही उसे रामचन्द्रके पास लेगया। रामचन्द्रने एकान्त स्थानमें ले जाकर रत्नद्वीपसे सब हाल ठीक ठीक पूछा। उन्होंने शीघ्र ही अपने शामन्तोंको आज्ञा दी कि वीरो, जल्दी तैयारी करो। आज हमें रावणकी राजधानी पर चढ़ाई करना है पर सामन्तोंने राय दी कि महाराज, रावण कोई साधारण पुरुष नहीं है इसलिए पहले यहबात जान लेना चाहिए कि सीता वहां सचमुच है कि नहीं? यदि है तो कहां पर? और रावण इस समय किस काममें लगा है। रामचन्द्रने उन लोगोंका कहना स्वीकार किया। परन्तु, वहां जाय तो कौन जाय। अन्तमें हनुमान बुलवाये गये। सुग्रीव और रामचन्द्रने उनकी धीरता एवं बीरताकी खूब प्रशंसा की। सुनकर हनुमानने कहा कि आप चिन्ता न करें, मै लंकामें जाकर अवश्य जनकनन्दनी का पता लगा लाऊंगा। हनुमानका उत्साह देखकर रामचन्द्रने उन्हें एकान्तमें लेजाकर कहा—"हनुमान! मैं तुम्हें यह अंगूठी देता हूं। इसे सीताको दिखा-कर कहना कि तुम सोच न करो, तुम्हारे छुड़ानेका शीघ्र उपाय किया जारहा है" इतना सुनकर हनुमान रामचन्द्रको नमस्कारकर लङ्काकी ओर रवाना हुए। रास्तेमें उसे एक विद्या मिली। उसकी कुछ ख्याल न कर वह उसका उदर चीरता हुआ चला गया और धीरे २ लङ्कामें जा पहुंचा। हनुमानको वहां एक सज्जन से भेंट हो गयी हनुमानके पूछने पर उसने सीताके निवासस्थानका सब हाल ठीक २ बता दिया। उसके कथनानुसार हनुमान उस वनमें गये जहां सीताजी थी। हनुमान एक वृक्षपर चढ़कर सीताका सबहाल देखने लगे। उनने देखा कि कामी रावणने अपनी मन्दोदरी आदि स्त्रियोंको सीताके पास भेजा है। वे सीताको अनेकों प्रलोभन देकर कह रही थी कि तुम रावणको पति स्वीकार करो। कारण कि रामचन्द्र एक साधारण पुरुष हैं और रावण जगत विख्यात एक महान पुरुष है। मन्दोदरीकी ऐसी निर्लज्जास्पद बातोंसे सीताको बहुत क्रोध हुआ। वह उसे झिझकारकर बोली कि क्या तुझे ऐसी बातें कहते लज्जा नहीं आती? सीताकी फटकार मन्दोदरीको बहुत बुरी लगी। वह जलकर खाक हो गयी। वह सीताको दुःख देना चाहती ही थी कि हनुमानजीने वृक्षसे

उतर कर मन्दोदरी आदिको कुछ अपने कियेका फल दिया और आप सीताके पास पहुंचे। हनुमानजीने सीताके सामने रामचन्द्रकी दी हुई अंगुठी रख कर प्रणाम किया। अंगुठी देखते ही सीताके आनन्दका पारावार न रहा। सीताने राम लक्ष्मणका कुशल समाचार पूछा। हनुमानने सीताको बहुत ढाढ़स दिया। राम लक्ष्मण सुग्रीवके साथ आपको छुड़ानेके लिए शीघ्र ही आवेंगे। सीता जबसे यहां लाई गयी थी तभीसे निराहार थी। अतः हनुमानने फल लाकर उन्हें भोजन कराया। उधर मन्दोदरी क्रोधित होकर अपने प्रियतमके पास गयी, यह बात सुनकर रावणको बहुत क्रोध हुआ। उन्होंने तुरन्त अपनी सेना भेजी, पर हनुमानने देखते ही देखते उन सबोंको मारकर धराशायी कर दिया। अन्तमें वह रावणके पास जाकर बोला कि विद्याधराधिपति! तूं तो बड़ा बुद्धिमान और नीतिज्ञ समझा जाता था। तूने यह मूर्खता कैसी की? क्या तुम्हें मालूम नहीं कि इस स्त्रीका स्वामी कितना प्रतापी है? इसी प्रकार हनुमानने उसे बहुत फटकारा। सुनकर रावणको अत्यन्त क्रोध हुआ और नौकरोंको हुक्म दिया कि जल्दी इसका शिर काट डालो। नौकर आज्ञा सुनते ही उसपर टूटे पर कुछ कर नहीं सके। रावणकी धृष्टतापर हनुमान झट आकाशकी ओर चला गया और उसने एक तरफ लङ्कामें आग लगा दी। इसके बाद हनुमान सीताके पास आया और चिन्ह स्वरूप उनका चूणामणि लेकर रामचन्द्रके पास चला। रामके पास पहुंचकर उसने सीताका सब सम्वाद कह सुनाया। यह सम्वाद सुनकर रामचन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। विद्याधरोंने यह निश्चय किया कि यह दोनों कैसे वीर हैं। इसलिए सबसे पहले हमे उनके बलकी जांच करनी चाहिये। अस्तु यही बात पक्की हुई कि यदि वे लोग कोटि शिला उठा लें तो उनका साथ देना ठीक होगा। यह सुन लक्ष्मण सहर्ष उठकर शिलाके पास आये और उसकी पूजाकर कोट शिला उठा दी। अब विद्याधरोंको पूर्ण विश्वास हो गया कि उन्हीं दोनों भाइयोंके हाथसे रावण कुलका नाश होगा। अतः वे उन्हें विमानपर बैठाकर किष्किन्धापुरीमें ले गये। अब रावणसे युद्ध होना निश्चित हो गया। सब विद्याधर अपनी २ सेना एकत्रित करने लगे। सीताके भाई भामण्डलके पास भी दूत भेजा गया। वह भी

एक हजार अक्षोहिणी सेना लेकर आ उपस्थित हुआ। उस समयकी अपार सेनाको देखकर रामचन्द्र और लक्ष्मणके हृदयमें आनन्दका ठिकाना नहीं रहा। सेना खूब सज धजके साथ लङ्काको रवाना हुई। लङ्काकी शोभा देखने ही योग्य थी। उसके चारों ओर प्राकार बना हुआ था। एक दिन रात्रिके समय रावणने सीताको राक्षस, भूत, पिशाच, डाकिनी, सर्प, सिंह और हाथी आदि भयावने जीव जन्तुओंकी गर्जनासे डराना चाहा, पर सीता निर्भीक हो रावण की यह नीचता उसी प्रकार सहती रही जिस प्रकार वर्षा ऋतुमें जलकी धारा को पर्वत सह लेता है। जब यह बात विभीषणको मालूम हुई तो वह बहुत दुःखित हुआ। वह सीताको कुछ आश्वासन देकर रावणके पास गया और बोला कि—हे पूज्य ! आप तो स्वयं विद्वान हैं। आप अच्छी तरह जानते हैं कि परस्त्री सेवनसे कुलकी कीर्ति धूलमें मिल जाती है। विभीषणके समझानेका उसपर उलटा प्रभाव पड़ा तब विभीषण राज्यसे चला और ससैन्य रामचन्द्रसे जा मिला। रामचन्द्रने उसे गले लगाकर पूछा कि, लङ्कापति ! अच्छी तरह तो हो ? अब तुम सब चिन्ताओंको छोड़ो। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि तुझे लङ्काका राज्य अवश्य दिया जायेगा। विभीषणने विनम्र भावसे रामचन्द्रका आशीर्वाद शिरोधार्य्य किया। जब विभीषण और रामचन्द्रके सम्मिलनका हाल रावणको मालूम हुआ तो उसने उसी समय अपने वीरोंको बुलाकर लड़ाईकी तैयारीका हुक्म दिया। हुक्म पाते ही इन्द्रजीत, मेघनाद, कुम्भकर्ण आदि वीर वहां आ उपस्थित हुए। रावण उनके साथ युद्धक्षेत्रमें चला। रावण चार हजार अक्षोहणी सेनाके साथ रामचन्द्रका सामना करने लगा। उनके पैरकी धूलोसे गगन मण्डल आच्छादित हो रहा था। उसकी इतनी विशाल सेनाके सम्मुख दैत्योंकी भी हिम्मत हार जाती थी फिर मनुष्यका पूछना ही क्या ? आज्ञा पाते ही दोनों सेनाओंमें मुठभेड़ शुरू हो गयी। बहुत देरतक घमासान युद्ध होता रहा।

अन्तमें रावणकी सेना परास्त होकर भागी। यह देखकर रावण स्वयं उठा और अपने भागतेहुए वीरोंको ललकारा कि--वीरो ! यह भागनेका समय नहीं है। तुमलोग कायरके समान युद्धक्षेत्रमें शत्रुओंको अपनी पीठ मत

दिखाओ। याद रखो कि यदि युद्धमें मारे जाओगे तो स्वर्गमें स्थान पाओगे और यदि जीवित बचे तो विजय श्रीका सुख लूटोगे। बस रावणका इतना कहना ही था कि उसकी सेना लौटी और रामचन्द्रकी सेनाको व्याकुल कर दी। यह देख लक्ष्मणने कहा, बीरो क्यों भागते हो ? सेनासे उत्तर मिला कि वह रावणके प्रतापको नहीं सहन कर सकती है। इसपर लक्ष्मणने अपने बीरोंको ललकारा कि, योद्धाओं भागो मत। मैं अभी रावणकी प्रतापाग्निको अपने बाण रूपी जलसे बुझाए देता हूं। यह सुनते ही सब सेना एकत्रित होकर उसी प्रकार अविरल्गतिसे आगे बढ़ी जिस प्रकार बर्षा ऋतुमें नदीकी धारा। लक्ष्मण ससैन्य युद्धभूमिमें पहुंचे। उन्हें देखते ही रावण कहने लगा—"लक्ष्मण अभी तो तुम बालक हो, क्या तुम्हें अपनी मृत्युसे भय नहीं है ? मुझे तुम्हारी इस किशोरावस्थापर बड़ी दया आती है।" लक्ष्मणने कहा, काम तो चोरका और फिर दया ! मेरे बालक होनेसे क्या ! तेरे पापका प्रायश्चित भोगनेके लिए मैं समर्थ हूँ। इस प्रकार दोनोंमें कटु भाषण होते २ युद्ध छिड़ गया। बहुत भीषण युद्ध हुआ। लक्ष्मणकी बीरता देख देवता भी आश्चर्य करते थे। इस युद्धमें लक्षमण की विजय हुयी। उसने रावणको व्याकुल कर दिया। तब उसने लक्षमणपर शक्ति चलाई। शक्तिके लगते ही लक्षमण मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिरपड़े। यह समाचार पाते ही रामचन्द्र युद्धभूमिमें आये। भाईकी यह हालत देख वे बहुत दुःखी हुये। युद्ध स्थगितकर दिया गया। अब रावण अपने बिजय पर गर्वित होकर अपनी राजधानीमें जाकर रहने लगा। इसी समय आष्टान्हिका पर्व आगया। पर्वके ध्यानमें युद्धका ध्यान ही जाता रहा। रामचन्द्र लक्षमणको उठाकर डेरेपर ले गये। कुटिल रावणका अधिक भय होनेसे उनकी रक्षाका अधिक प्रबन्ध किया गया। रामचन्द्रको तो रोनेके सिवा और कुछ सूझही नहीं पड़ता था। उन्होंने भामण्डल द्वारा सीताके पास कहला भेजा कि युद्धमें लक्ष्मण ने अपने प्राण दे दिये हैं। रामचन्द भी उनके साथ २ अग्निमें प्रवेशकर अपनी जीवन यात्राका अन्त करेंगे। तुम अपने कुलकी रीति न छोड़ना। लक्षमणकी मृत्युका जितना दुःख मुझे नहीं है उससे अधिक विभीषणके सामने झूठा होनेका है। वह मुझे क्या कहेगा ? इस प्रकार रामचन्द्र व्याकुल हो रहे थे।

इतनेमें एक विद्याधरने आकर हनुमानसे कहा कि यदि लक्ष्मणके ऊपर विशल्या का जल छींटा जाय तो वे अवश्य जीवित हो जायेंगे। कारण कि मुझे भी जब एकबार शक्ति लगी थी तो इसी उपचारका प्रयोग किया गया था। भाई! बताओ, विशल्या कहां मिलेगी। विद्याधर कहने लगा कि:—एक द्रोण नाम का राजा है। वह भरतका मामा है। उसकी विशल्या नामकी कन्या है। तुम उसीके पास जाओ। रामचन्द्रने कहा—हो सके तो उपाय करो। अस्तु, भाम-ण्डल और हनुमान विमानपर चढ़कर अयोध्यामें भरतके पास पहुंचे। उन्होंने लक्ष्मणको शक्ति लगनेकी बात कहते हुए विशल्याके जलके विषयमें कहा। आप जल्दी जलका प्रबंध कीजिए नहीं तो सूर्य्योदय होनेपर दवा भी कुछ काम नहीं करेगी। सुनते ही भरत तुरंत विमानपर बैठकर अपने मामाके घर पहुंचे। सोते हुए द्रोणको जगाया और लक्ष्मणकी शक्तिका सब हाल उनसे कहा। द्रोणने उसी समय अपनी पुत्री विशल्याको बुलाया और कहा कि—वेटी लक्ष्मणको शक्ति लगी है। वह मूर्छित होकर पड़ा हुआ है। तुम शीघ्र अपने शरीरका जल देदो, जिसे वह सचेत हो जांय। पिताके कहनेपर विशल्याने पूछा—कि पिताजी। ये लक्ष्मण कौन हैं। द्रोणने कहा—"पुत्री! वह दशरथ और सुमित्राका पुत्र तथा रामचन्द्रके भाई हैं। लङ्काके राजा रावणने उसपर शक्ति मारी है इसलिए हनुमान तुम्हारे शरीरका जल लेनेको आये हैं। विशल्याने कहा—पिताजी! मैं लक्ष्मणका गुण सुनकर चिरकालसे उनपर मोहित हूं। अबतक मैं उन्हींको अपना जीवनेश समझती थी। पिताकी आज्ञा पाकर विशल्या हनुमानके साथ २ चली। ज्यो ही उसने लक्ष्मणका शरीर स्पर्श किया कि उनके देहसे शक्ति निकलकर भागी। हनुमान दरवाजेपर बैठे हुए थे। शक्तिको भागते देखकर उन्होंने अपने हाथसे पकड़ा और क्रोधमें आकर कहा कि, दुष्ट बोल, अब तुझे क्या दण्ड दिया जाय? शक्तिने कर जोर कर हनुमानसे कहा—महात्मन्! अब मुझे छोड़ दो। मैं प्रण करती हूँ फिर कभी न आऊंगी। हनुमानने पुनः न आनेकी सपथ खिलाकर उसे छोड़ दी। उसने रावणके पास जाकर कहा कि, महाराज! मैं अब कभी भी रामचन्द्रकी सेना में न जाऊंगी। क्यों कि उसके अपार पुण्यके सामने मेरा कुछ बल नहीं

चलता है। उधर लक्ष्मण उसी प्रकार मूर्छासे जगकर उठे मानो सोये हुए थे। यह देख रामचन्द्रके हर्षका पारावार न रहा। तत्पश्चात् विशल्याका सब वृत्तान्त लक्ष्मणको सुनाकर उनके साथ उसका विवाह कर दिया गया। रावण ने देखा कि आष्टान्हिका पर्व आ गया है। अतः वह जिनमन्दिरमें जाकर बहु-रूपिणी विद्याकी सिद्धि करने लगा। रामचन्द्रने इसके अनुष्ठानमें विघ्न डालने को अंगदको भेजा पर अंगद कुछ न कर सके। उन्हें निराश होकर लौटना पड़ा। रावणने अपना अनुष्ठान पूर्ण किया। वह इन विद्याओंके द्वारा अनेकों तरहका रूप बनाने लगा।

लक्ष्मणके अच्छे होते ही रामचन्द्रने रावणको पुनः युद्धके लिए आह्वा-हन किया खबर पाते ही वह अपनी सेना लेकर युद्ध भूमिमें आ डटा। राम-चन्द्र और लक्ष्मण भी अपनी सेना लेकर आये। बीर पुरुषो अपने जीवनकी आशा न रख कीर्तिकी ओर अग्रसर हो गये। उस समय लक्ष्मणने रामचन्द्रसे कहा कि, पूज्य! आप यहीं ठहरें, मैं आता हूँ और रावणको अभी धराशायी कर लौटता हूँ। लक्ष्मणके कथनानुसार रामचन्द्र युद्ध क्षेत्रसे बाहर ही ठहर गये। रावणने लक्ष्मणके ऊपर अनेकों अस्त्र शस्त्र चलाये पर लक्ष्मण उसे उसी प्रकार नष्ट कर देते थे जिस प्रकार वायुका वेग बादलको तितर बितर कर देता है। इस प्रकार बहुत देर तक दोनोंमें घमासान युद्ध होता रहा। अन्तमें लक्ष्मणने अपने अर्ध चन्द्र बाणसे रावणका शिर काट दिया। पर ज्यों ज्यों लक्ष्मण उसका शिर काटते थे त्यों त्यों उसके सिर दूने होते गये। लक्ष्मणकी शक्ति देख रावणकी क्रोधाग्नि और भड़की। जब उसने देखा कि यह साधारण उपायोंसे पराजित नहीं हो सकता तो उसने चक्ररत्नका स्मरण किया। स्मरण करते ही चक्ररत्न हाथमें आ गया। उस चक्रकी इतनी ज्योति थी कि उसके ज्योतिसे रामचन्द्रकी सम्पूर्ण सेना घबड़ा गई। सच है, जिसकी सेवा हजारों देवता करते हैं उससे किसे डर न होगा चक्र अपने हाथमें लेकर राव-णने लक्ष्मणसे कहा—"ओ नीच! अभी तूं मेरे सामनेसे अलग होजा नहीं तो तुम्हारे घमंडका मजा चखाता हूँ। यदि तुम अपनी रक्षा चाहते हो तो अभी यहांसे भाग जा। यह सुनकर लक्ष्मणका क्रोध और बढ़ गया उन्होंने

भी बातें सुनाना आरम्भ की। वे बोले, अरे नीच ! चोरीके साथ सीनाजोरी करना चाहता है ? क्या दूसरेकी स्त्री चुराते हुये तुम्हें लज्जा नहीं आयी ? चला तेरा चक्र तो देखूं इसमें क्या ताकत है। लक्षमणके तीखे वाक्य बाणोंसे रावणका हृदय जरजरित हो चला। उसने लक्षमणके ऊपर चक्र चलाया पर चक्र लक्षमणको कुछ हानि न पहुंचा सका। उलटे प्रदक्षिणा कर उनके हाथमें आ गया। रावण अभी चुप भी नहीं हुआ था कि लक्षमणने उसके ऊपर चक्र चलाया। चक्रने पहुंचते ही रावणके शिरको धड़से अलग कर दिया। पृथ्वीमें उसका शिर गिरते ही सेनामें हाहाकार मच गया। विभीषणने भाईका अग्नि संस्कार किया। रामचन्द्रकी विजय पताका संसारके कोने २ में फहराने लगी। रामचन्द्रका प्रण पूरा हुआ। उन्होंने अपने बांह गहे की लाज रखी। विभीषण कोलंकाका राज्य दिया गया। सब राक्षसवंशी रामचन्द्रसे आ मिले। इसके बाद रामचन्द्र सीताके पास गये। सीताने चिरविरहित पतिको नमस्कार किया। इसके कुछ देर बाद लक्षमणने भी आकर सीताको प्रणाम किया। सीताने लक्षमणको जमीनसे उठाकर उसी प्रकार गोदमें बैठा लिया जिस प्रकार माता अपने बच्चेको बैठाती है सबोंके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। उन्हें हठात् अपनी मातृभूमिकी याद आ गई। कारण १४ वर्ष पूरे हो चुके थे।

उनका शुभागमन सुन भरतजी मार्गमें उनकी अगवानी करने आये। रामचन्द्र और भरतका सम्मिलन हुआ। वहांसे सब भाई सुसज्जित अयोध्यामें पहुंचे। रामचन्द्र अपनी प्रजासे प्रेम पूर्वक मिले। इस प्रसन्नतामें रामचन्द्रने अपने प्रिय पात्रोंको बहुत सी जागीरें दी। रामचन्द्रके शासनसे प्रजा अत्यन्त संतुष्ट हुई। भाइयो ! देखो परस्त्री गमनका फल ? याद रक्खो कि परस्त्री गमनका कितना पाप होता है। इसी पापके प्रभावसे रावण जैसे पराक्रमीका पराजय हुआ। यहीं तक उसके दुखका अन्त नहीं होगया बल्कि मरनेपर उसे नरककी यातना भी भोगना पड़ी। परस्त्री गमनसे अपनी रक्षा करो।

जैन-धर्म सब धर्मोंमें श्रेष्ठ है। इससे तुम्हारी सांसारिक भलाई होगी और मरनेपर तुम्हें देव पद मिल सकता है।

❀ समाप्त ❀